सन्त-वाणी

भाग-६

(कैसेट सं० ३३ से ३७ तक)



मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन—२८१ १२१

सन्त-वाणी

भाग-६

•



•

मानव सेवा संघ प्रकाशन

वृन्दावन—२८१ १२१

प्रकाशक :

मानव-सेवा-संघ

वृन्दावन, मथुरा (उ० प्र०)

पिन–२८१ १२१

प्रथम बार—४,०००

मूल्य : ७.०० (सात रुपये)

मुद्रक :

राष्ट्रीय प्रेस,

डैम्पीयर नगर, मथुरा।

फोन : ६८१२

परिचय

श्री स्वामीजी महाराज जब तक सशरीर विद्यमान थे, कुछ प्रेमी जनों ने उनकी विशेष स्वीकृति लेकर उनके कुछ प्रवचनों को टेप में रिकार्ड कर लिया था। उनके ब्रह्मलीन हो जाने के बाद उनके ही स्वर में जीवनोपयोगी अनमोल वचनों को सुनकर जीवनदायी प्रेरणा लेने के लिये उनके चुने हुए टेप रिकार्डेड प्रवचनों के कैसेट्स तैयार कराये गये। इस प्रकार श्री स्वामीजी महाराज के ४२ कैसेट्स तैयार हुए तथा उन्हें चार सैट्स में बांट दिया गया। पहले सैट में १२ कैसेट्स, दूसरे सैट में १०, तीसरे सैट में १० तथा चौथे सैट में १० कैसेट्स हैं।

सत्संग प्रेमियों की मांग तथा उन प्रवचनों के गूढ़ रहस्य को हृदयंगम करने के लिए यह आवश्यक हुआ कि उन प्रवचनों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जाए। अतः सन्त-वाणी भाग-२ में कैसेट् सं० १ से ६ तक, सन्त-वाणी भाग-३ में कैसेट सं० ७ से १२ तक, सन्त-वाणी भाग-४ में कैसेट सं० १३ से २२ तक तथा सन्त-वाणी भाग-५ में कैसेट सं० २३ से ३२ तक पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। अब इस सन्त-वाणी भाग-६ में कैसेट सं० ३३ से ३७ तक के प्रवचन प्रकाशित कर आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

सत्संग प्रेमी भाई-बहनों की सेवा में सप्रेम समर्पित यह सन्त-वाणी का छठवां पुष्प सब प्रकार से आपके लिये हितकारी हो, इसी सद्भावना के साथ !

वृन्दावन, —प्रकाशक
महाशिवरात्रि, दिनांक २ मार्च १९९२ **मानव सेवा संघ**

अनुक्रमणिका

३३

(अ)

प्रवचन :

कामना-पूर्ति के अन्त में हम उसी स्थिति में आते हैं, जिस स्थिति में कामना-उत्पत्ति से पूर्व हैं। परन्तु पुनः कामना-पूर्ति के प्रलोभन से नवीन कामना को उत्पन्न करते हैं। वैसे भी अगर देखा जाए, तो कामना-पूर्ति के अन्त में क्या प्राप्त होता है ? जो कामना-उत्पत्ति से पूर्व प्राप्त था वही प्राप्त होता है। अर्थात् कोई बात ऐसी प्राप्त नहीं होती, जो कामना-उत्पत्ति से पूर्व न हो और जो कामना-पूर्ति में प्राप्त हो जाए। आप कहेंगे, ऐसा तो होता है। जैसे एक विद्यार्थी यह कामना करता है कि मैं एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँ और जब वह एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है, तो वह अपने में यह पाता है कि मैं एम०ए० हो गया। ठीक है, किन्तु एम०ए० होने के अन्त में जब तक कोई कामना उत्पन्न नहीं होती, तब तक उसका एम०ए० होना और न होना क्या अर्थ रखता है ?

बहुत ही गम्भीरता से जब आप विचार करेंगे, तो आपको स्वयं ही यह अनुभव होगा कि किसी कामना-पूर्ति के लिए हम एम०ए० का उपयोग करें, यह बात अलग है। किन्तु जब तक दूसरी कामना पूरी नहीं होती, तब तक कोई अन्तर

नहीं होता एम०ए० होने में, न होने में। क्यों अन्तर नहीं होता ? कि कामना-उत्पत्ति से पूर्व जो जीवन है वह सदैव है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता और कामना-पूर्ति से कोई नई बात प्राप्त हो जाती हो, ऐसा भी नहीं होता। हां, नवीन कामना-पूर्ति का एक प्रयास आरम्भ हो जाता है अथवा यों कहिए कि नवीन कामना का जन्म हो जाता है। तो प्रत्येक कामना-पूर्ति का सुख नवीन कामना को जन्म देता है—ऐसा प्रत्येक भाई को, बहन को अपने-अपने जीवन में देखने से अनुभव होगा।

अब आप विचार करें कि कामना-पूर्ति होनेपर भी नवीन कामना का ही जन्म हुआ। तो मिला क्या ? कहना पड़ता है कि परिणाम में कामना अपूर्ति। यदि कामना-पूर्ति के अन्त में कामना की उत्पत्ति न हो, तब तो आप कह सकते हैं कि भाई, अन्त में कामना-निवृत्ति हो गई। किन्तु कामना-पूर्ति को जीवन का लक्ष्य मानते हुए तो ऐसा नहीं होता। एक कामना पूरी होती है, अच्छा लगता है और उस अच्छा लगने का परिणाम यह होता है कि एक नवीन कामना का जन्म हो जाता है। तो कामना-पूर्ति कामना को ही जन्म देती है, उससे कोई और वस्तु नहीं मिलती। कोई ऐसी वस्तु नहीं मिलती कि जो कामना को उत्पन्न न होने दे। अर्थात् हम उसी दशा में रहते हैं, जिसमें हैं। किन्तु ऐसा मालूम नहीं पड़ता। मालूम पड़ता है कि हम बदल गए। क्यों मालूम पड़ता है कि हम बदल गए ? हम यदि प्रत्येक परिस्थिति की वास्तविकता पर विचार करें कि असलियत क्या है, तो आपको सभी परिस्थितियां समान दिखाई देंगी। किस दृष्टि से ? कि सभी कामनाएं पूरी

होती ही नहीं, यह सभी परिस्थितियों की बात है; और कुछ कामनाएं सभी की पूरी होती है। तो बताइए, अन्त क्या हुआ मजदूर से लेकर मिल आँनर तक, बेपढ़े से पढ़े-लिखे तक ?

जब यह नियम ही है कि सभी कामनाएं किसी की पूरी होती ही नहीं और कुछ कामनाएं सभी की पूरी होती हैं, तो यह जो परिस्थितियों का महत्व हमारे जीवन में है, वह क्या अर्थ रखता है ? परिणाम में तो कुछ अर्थ नहीं रखता। हां, बाह्य दृष्टि से भेद मालूम होता है, पर वास्तविकता में कोई भेद नहीं है। इस बात का ठीक-ठीक अनुभव कर लेना काम के नाश में हेतु है, अर्थात् आप में-से जगत का बीज मिट सकता है। जगत रहेगा या मिटेगा, यह बात जगत जानें। परन्तु आप में-से जगत का बीज नाश हो जाएगा। कब ? जब आप इस अपने अनुभव का आदर करें कि बाह्य भेद होने पर भी सभी परिस्थितियां समान अर्थ रखती हैं, कोई अन्तर नहीं होता। क्यों ? यह परिस्थिति के तादात्म्य का ही परिणाम है।

जब हम किसी भी परिस्थिति में अपने को आबद्ध कर लेते हैं, तब परिणाम में हमें यही मिलता है कि कुछ कामनाएं पूरी हो जाती हैं और कुछ नहीं होतीं, अर्थात् सुख और दुख। कामना-पूर्ति काल में सुख की अनुभूति और अपूर्ति-काल में दुख की अनुभूति। किन्तु सुख में भी पराधीनता है और दुख में भी। तो वास्तविकता सुख और दुख की समान हो गई न ? अगर सुख काल में स्वाधीनता रहती और दुख काल में परा-

धीनता रहती, तब तो आप कह सकते हैं कि भाई, सुख और दुख की वास्तविकता में भेद है। किन्तु इतना ही अन्तर है कि सुख अच्छा लगता है, पर चला जाता है, दुख अच्छा नहीं लगता, किन्तु आजाता है। इसके अतिरिक्त आप सुख और दुख में कोई भेद नहीं कर सकते। जो अच्छा लगता है वह रहता नहीं, जो अच्छा नहीं लगता वह आजाता है। यह भी एक पराधीनता हुई न ? तो मानव सुख में भी पराधीन रहता है और दुख में भी।

अब कल्पना करो कि यदि किसी की मांग स्वाधीनता है, तो उसके लिए सुख और दुख में क्या भेद मालूम होगा ? कोई नहीं। तो स्वाधीनता की जो मांग है जीवन में, वह कब पूरी होगी ? जब जीवन में सुख का कोई महत्त्व न रहे और दुख का कोई भय न रहे। अर्थात् जब सुख का प्रलोभन और दुख का भय नहीं रहता, तब अपने आप स्वाधीनता के साम्राज्य में प्रवेश पाते हैं।

अब आप देखिए, सुख तो रहता नहीं, हम केवल प्रलोभन रखते हैं। तो जो नहीं रहता उसका प्रलोभन क्या अर्थ रखता है ? जैसे, किसी से कहा जाए, कि हमारे जीवन में लालच तो है। बोले, किसका ? जो नहीं रहता उसका। तो यही कहेंगे कि तुम बड़े अजीब आदमी हो। अरे भाई, नहीं रहने वाले के लालच से क्या लाभ ? बोले, लाभ हो या न हो, पर लालच है उसी का, जो नहीं है। इसी का नाम भूल है, असत् का संग है कि आज हम उसका प्रलोभन रखते हैं जो नहीं है अथवा यों कहलो कि भाई, जो नहीं रहता। और भयभीत

किससे होते हैं ? कि जिसको मिटा नहीं सकते, हटा भी नहीं सकते। अरे भाई, जिसके साथ रहना ही है उससे भयभीत होने से क्या लाभ ? यदि हम दुख से भयभीत न हों और सुख का प्रलोभन न रखें, तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक काम का नाश हो सकता है।

काम का नाश होते ही जिज्ञासा की पूर्ति अपने आप होती है। पर इस बात को बहुत से लोग मानते ही नहीं हैं। कहते हैं कि नहीं, निष्काम होने के बाद भी जिज्ञासा कब पूरी होगी ? कि जब कोई तत्त्ववेता महा पुरुष महा वाक्य का उपदेश करेंगे। इस प्रकार की धारणा भी है, ऐसा भी लोग मानते हैं।

इस सम्बन्ध में मानव-दर्शन का यह सुझाव है कि भाई, मांग-पूर्ति की सामर्थ्य मंगलमय विधान से स्वतः प्राप्त होती है। किन्तु जब आप अपनी ओर से एक धारणा बना लेते हैं कि जब तक कोई दूसरा अर्थात् बाह्य गुरु हमें महा वाक्य नहीं सुनाएगा, तब तक साक्षात्कार नहीं होगा। यह आपकी धारणा भले ही आपके लिए इस बात को बताए कि ऐसा करने से ऐसा होगा। किन्तु यह तो बताइए कि जो बाह्य गुरु मिलेगा वह किसकी प्रेरणा से मिलेगा ? आप आवश्यकता ही अनुभव करते हैं, पर उस आवश्यकता की पूर्ति तो किसी विधान से ही होती है।

क्या वह गुरुतत्व आपको आपके विवेक के रूप में नही प्राप्त हो सकता ? मेरा तो यह विश्वास है कि विचार का उदय आप में ही होता है। कब ? जब आप जिज्ञासा-पूर्ति को ही

अपने सामने रखें तब। कामना-पूर्ति के प्रलोभन से रहित हो कर, कामना-अपूर्ति के दुख के भय से मुक्त होकर अथवा यों कहों कि भयभीत न होने पर स्वत: जिज्ञासा-पूर्ति के लिए विचार का उदय होता है। नहीं तो, आप ही बताइए कि जो सबसे पहला गुरु रहा होगा उसका कौन गुरु होगा ? अगर बाह्य गुरु के बिना तत्व-साक्षात्कार नहीं होता, तो आप यह बताइए कि सबसे पहले तत्व-साक्षात्कार कैसे हुआ होगा ? हुआ होगा कि नहीं ? आखिर गुरु परम्परा चली होगी कि नहीं ? तो जो सबका गुरु होगा, मानना पड़ेगा कि उसका कोई गुरु नहीं होगा। यदि एक व्यक्ति को भी बिना गुरु के तत्व-साक्षात्कार हो सकता है, तो यह विधान तो नहीं हुआ कि बिना गुरु के तत्व-साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि बाह्य गुरु के द्वारा तत्व-साक्षात्कार नहीं होगा, यह अर्थ मत लगा लीजिए। पर यह विधान मत बना लीजिए कि बिना बाह्य गुरु के तत्व-साक्षात्कार नहीं होगा। यह तो आपकी अपनी अभिरुचि की बात है, आपकी अवस्था की बात है।

अगर आप यह सोचते हैं कि भाई, जब तक कोई महा पुरुष हमें स्वयं महा वाक्य नहीं सुनाएगा, तब तक हमें बोध होगा, तो विधान से आपको कोई ऐसा महा पुरुष भी मिल जाएगा और वह सुना भी देगा। किन्तु बोध की मांग किसमें होगी ? वह आप में होगी और प्रलोभन और भय से रहित होने पर होगी। जब तक दु:ख के भय में हम आबद्ध हैं, तब तक तो जिज्ञासा की जागृति नहीं होती और जब तक सुख के प्रलोभन में आबद्ध हैं, तव तक तत्व-जिज्ञासा की जागृति नहीं

होती। तो सुख के प्रलोभन से रहित होना और दुख के भय से रहित होना, यह तो आपको स्वयं अपनाना होगा।

आप कहेंगे, दुख के भय से कैसे रहित हों? आप विचार कीजिए कि जब जीवन में सुख का प्रलोभन नहीं रहता, तब दुख का भय भी नहीं रहता। सुख के प्रलोभन का ही परिणाम है कि जो दुख के रूप में आपको प्रतीत होता है। क्यों? जहाँ कामना-पूर्ति का ही प्रश्न नहीं है, वहाँ अपूर्ति का दुख कैसे हो जाएगा? इससे क्या सिद्ध हुआ? कि एकमात्र सुख के प्रलोभन का ही त्याग करना है। अथवा यों कहो कि अब हमें स्वाधीन होना है, पराधीन नहीं रहना है। इस मांग को ही जागृत करना है कि हम किसी भी प्रकार पराधीन होना स्वीकार न करें, पराधीन रहना स्वीकार न करें, तब अपने आप स्वाधीनता यानी 'स्व' में, अपने में अपनी आस्था होगी।

पराधीनता का वास्तविक रूप क्या है? अपने में अपनी आस्था का न होना। पराधीनता है, तो आप अपने में अपनी आस्था ही नहीं कर सकते। तब आप अपने में अपने को सन्तुष्ट कैसे रख सकते हैं? जिसे पराधीनता नहीं भाती, वह अपने में अपनी आस्था करता है। जब वह अपने में अपनी आस्था करता है, तब उसे अपने में अपनी प्रियता प्राप्त होती है। अपने में अपनी प्रियता प्राप्त होने पर समस्त आसक्तियों का स्वतः नाश हो जाता है। इससे क्या सिद्ध हुआ? कि स्वाधीनता आपको स्वाधीनतापूर्वक प्राप्त होती है। किसी 'पर' के आश्रय से स्वाधीनता मिलती हो, ऐसा है नहीं। आप सोचिए कि जो स्वाधीनता स्वाधीनतापूर्वक मिल सकती है उससे हम क्यों

निराश होते हैं ? पराधीन होने पर भी पराधीनता सुरक्षित नहीं रहती, उसकी आवश्यकता हम क्यों अनुभव करते हैं ? किसी अन्य के द्वारा जो हमें मिलेगा वह सदैव हमारे साथ कभी नहीं रहेगा। जो सदैव रह ही नहीं सकता उसको आप सदैव रखने की बात क्यों सोचते हैं ? अर्थात् जो हो ही नहीं सकता, उसको सोचते हैं कि होना चाहिए और जो हो सकता है, उससे निराश हो जाते हैं।

हम अपने में अपने को सन्तुष्ट रख सकते हैं, हम अपने में अपनी आस्था कर सकते हैं, हम अपने में अपनी प्रियता रख सकते हैं—इससे तो हम हो जाएँ निराश और जो नहीं कर सकते हैं, जो नहीं रख सकते हैं, उसकी करें आशा। यही न पराधीनता है ?

बहुत दिन की बात है, एक सन्त ने अपनी ओर से करुणा से पीड़ित होकर मेरे सम्बन्ध में कहा कि महाराज जी की सेवा करें और उसको पूरा निभाया। हम लोग दोनों साथ-साथ थे। कुछ ऐसी बात हो गई कि जिससे उनके मन में यह बात आ गई कि अब हम अलग हो जाएँ। मिलन के साथ-साथ अलग होना अनिवार्य है। तो जब उन्होंने कहा कि हम अलग होना चाहते हैं—आप जानते हैं कि जो पराधीन होता है उसको यह बात अच्छी नहीं लगती—तो मेरा चित्त कुछ उदास हुआ। मुझको उदास देखकर उन्होंने कहा कि देखो, मैं एक बात कहता हूँ—बड़े अच्छे सन्त थे वे—जो कोई घर छोड़ता है, वह किसी व्यक्ति के लिए नहीं छोड़ता। तुम यह बात अपने जीवन में-से निकाल दो कि कोई मेरे साथ रहे। यदि तुम प्रीतिपूर्वक

भी यह बात रखोगे, तो तुम्हारा चूंकि निर्बल पक्ष है, इसलिए दूसरा आदमी यही समझेगा कि यह अपने सुख के लिए साथ रखना चाहते हैं। इतना कहकर अन्त में वे बड़े प्रसन्न हुए, बड़ा दुलार किया और कहने लगे कि नारायण! जब फिर मिलेंगे, तो इसी प्यार से मिलेंगे। उनके इस आदेश-सन्देश से मुझे बड़ा लाभ हुआ। ऐसा मालूम हुआ मुझको कि मानों, मैं जीवन भर के लिए बिल्कुल स्वाधीन हो गया। जब मैं उनसे अकेला होकर रहने लगा, तो मुझको कोई असुविधा नहीं हुई। ऐसी कोई बात नहीं हुई कि जिससे मैं यह अनुभव करूं कि हाय! हाय!! मैं अकेला। सारी आवश्यक बातें अपने आप पूरी होने लगीं।

आप यह सोचते हों कि आपकी कामना आपके कार्य को पूरा करती है, सो नहीं करती। कार्य की पूर्ति तो वैधानिक दृष्टि से होती ही है। हम कामना करके अपने को पराधीन बना लेते हैं। इसके अतिरिक्त कामना से कोई भी लाभ नहीं होता। इसलिए भाई, जो हमारे बिना रह सके, हम उसके बिना सहर्ष रह सकें। रहना तो पड़ता ही है। न रहना पड़े, ऐसी बात नहीं है। किन्तु हर्षपूर्वक नहीं रहते। बस, यही पराधीनता है।

यदि काम का नाश करना ही, तो यह नियम बहुत आवश्यक है कि जो हमारे बिना रह सके, हम उसके बिना सहर्ष रहेंगे। ऐसा निर्णय करते ही अप्राप्त की कामना नाश होगी, प्राप्त से असहयोग होगा। क्यों? हम जानते ही हैं कि एक दिन शरीर भी हमारे बिना रह सकेगा, तो फिर प्राप्त से असहयोग हो

जाए अर्थात् असंगता हो जाए और अप्राप्त की कामना न रहे। तब क्या मिलेगा ? तब जिज्ञासा की पूर्ति होगी।

अब आप देखिए, जिज्ञासा-पूर्ति के लिए केवल इतना ही प्रयास है कि जो वस्तुरूप से, योग्यता रूप से, सामर्थ्यरूप से प्राप्त है, उससे असहयोग अर्थात् उसमें अपना तादात्म्य न न रखें और जो अप्राप्त है, उसकी कामना का त्याग करें। यह आप स्वाधीनतापूर्वक कर सकते हैं, इसमें आप पराधीन नहीं हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ ? कि स्वाधीनतापूर्वक स्वाधीनता मिल सकती है। किन्तु आज ऐसा मालूम होता है कि भला, हम साधारण मानव को कहीं स्वाधीनता मिलेगी ! तो मैं आपसे पूछता हूँ, क्या स्वाधीन को स्वाधीनता मिलेगी ? उसी को न मिलेगी जो पराधीनता में आबद्ध है ? पराधीनता क्या है ? प्राप्त में तो हम तादात्म्य कर लेते हैं और अप्राप्त की हम कामना करते हैं। इसके अतिरिक्त बताइए, पराधीनता क्या है ? प्राप्त के तादात्म्य के अतिरिक्त और अप्राप्त की कामना के अतिरिक्त और तो कोई पराधीनता नहीं है।

अगर हम यह अनुभव करें कि जो मिला है, जिसे जानने की हम में शक्ति है जैसे, हम जानते हैं कि हमें बोलने की शक्ति मिली है, सुनने की शक्ति मिली है, देखने की शक्ति मिली है, सोचने की शक्ति मिली है, काम करने की शक्ति मिली है, क्या उससे हमारा नित्य सम्बन्ध रहेगा ? तो आपको स्वयं अनुभव होगा कि बोलते-बोलते न बोलने की स्थिति आएगी, मिलना वियोग में बदलेगा अथवा यों कहिए कि बदल रहा है। जब हम और आप यह जानते ही हैं, तो तादात्म्य तोड़ने में क्या

कठिनाई होगी ? अब आप कहेंगे कि तादात्म्य तोड़ना तो चाहते हैं, पर नहीं टूटता। वह तो इसलिए नहीं टूटता कि आप निर्ममता और निष्कामता को नहीं अपनाते। यदि आप अपना भी लेते हैं, तो निर्ममता से उदित निर्विकारता और निष्कामता से प्राप्त जो शान्ति है उसको अपने में आरोप कर लेते हैं। आप इस बात का रस लेने लगते हैं कि मैं निर्विकार हूँ, मैं शान्त हूँ। अर्थात् किसी-न-किसी अवस्था से तद्रूप हो जाते हैं। निष्काम होना है; पर निष्कामता से जो शान्ति प्राप्त होती है उसमें रमण नहीं करना है। निर्मम होना है; किन्तु निर्ममता से जो निर्विकारता प्राप्त होती है उसमें जीवन-बुद्धि नहीं रखना है।

अगर कोई यह कहे कि जब हम निर्विकारता में, शान्ति में जीवन-बुद्धि नहीं रखेंगे, तब क्या निर्विकारता और शान्ति रहेगी ? रहेगी। क्यों ? सत्संग से जो चीज प्राप्त होती है वह अविनाशी होती है। तो मिले हुए की ममता का त्याग सत्संग है, अप्राप्त की कामना का त्याग सत्संग है। सत् के संग से जो प्राप्त होगा वह अविनाशी होगा और असत् के संग से जो प्राप्त होगा वह नाशवान होगा। ममता के आधार पर आपको जो सुख मालूम होता है वह सदैव नहीं रहता। कामना-पूर्ति के आधार पर जो आपको सुख मालूम होता है वह सदैव नहीं रहता। क्यों नहीं रहता ? असत् के संग से जो मिलता है वह सदैव रहता ही नहीं और सत् के संग से जो मिलता है उसका कभी नाश होता ही नहीं। अब आप कहें कि जब नाश होता ही नहीं, तो निर्विकारता में और शान्ति में जीवन-बुद्धि

रखने से क्या हानि होगी? हानि यह होगी कि आप में परिच्छिन्नता बनी रहेगी। जिसमें जगत का बीज, तत्व की जिज्ञासा और प्रीति की लालसा है, वही तो अहंभावरूपी अणु है, जिसमें यह तीनों चीजें मौजूद हैं।

यदि आप शान्ति में रमण करेंगे अथवा अपने में दिव्य गुणों का आरोप करके अपने में सन्तुष्ट होंगे, तो अहंरूपी अणु ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रहेगा। जब तक वह सुरक्षित रहेगा, तब तक किसी-न-किसी रूप में सत् से दूरी रहेगी। दूरी के रहते हुए नित्य-योग नहीं हो सकता, भेद के रहते हुए बोध नहीं हो सकता और भिन्नता के रहते हुए अगाध प्रियता नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिए इस अहंरूपी अणु का अन्त करना अनिवार्य है। उसके बाद ही तत्व-जिज्ञासा की पूर्ति और प्रेम की प्राप्ति होती है।

अहंरूपी अणु का नाश कैसे होगा? निर्ममता से जो निर्विकरता प्राप्त हुई और निष्कामता से जो शान्ति मिली उसका आश्रय हम न लें, उसे अपनी खुराक न बनाएँ। ऐसा न अनुभव करें कि मैं निर्विकार हूँ, मैं शान्त हूँ। ऐसा भोग न करें। जो निर्विकारता का भी भोग नहीं करता, जो शान्ति का भी भोग नहीं करता, उसे स्वाधीनता मिलती है। किन्तु एक विशेष बात यह होती है कि स्वाधीनता भी मिलती है और निर्विकारता तथा शान्ति भी रहती है। तो निर्विकारता का भोग न करने से अथवा शान्ति में रमण न करने से शान्ति भी रही, निर्विकारता भी रही और स्वाधीनता मिली।

आप विचार कीजिए, किसी के आश्रय से जो चीज

प्राप्त होती है वह अनन्त नहीं होती, वह आपकी परिच्छिन्नता को नहीं मिटा सकती। शान्ति में रमण न करने से जब स्वाधीनता प्राप्त हुई, तो रमण न करने में आप स्वाधीन हैं, पराधीन नहीं। जैसे ममता के त्याग में स्वाधीन हैं, कामना के त्याग में स्वाधीन हैं, वैसे ही निर्ममता और निष्कामता से जो दिव्य जीवन प्राप्त होता है, जो विशेषता प्राप्त होती है, उस विशेषता में भी रमण न करें, इसमें आप पराधीन नहीं हैं। रमण न करने का अर्थ क्या होगा? उसका आश्रय लेकर अपना मूल्यांकन न करें।

क्या आप शान्ति के बिना नहीं रह सकेंगे? पर एक बात है, शान्ति आपके बिना न रह सकेगी। आप निर्विकारता के अभिमान से रहित होकर भी रह सकेंगे, पर निर्विकारता आपके बिना न रह सकेगी। यह स्वाधीनता की महिमा है कि समस्त दिव्य जीवन स्वाधीनतापूर्वक सदैव रहता है। क्यों? स्वाधीन किसी का भोगी नहीं है। जो किसी का भोगी नहीं है उससे किसी को भय नहीं है। आप मानें या न मानें, भोक्ता से सभी को भय होता है। क्यों? वह उसके विनाश में हेतु है यों। अपना नाश करने वाले से सभी को भय होगा कि नहीं? अगर भोजन बोलता होता, बात करता होता, तो आपको देख कर कांप जाता कि आया, मुझे खा जाएगा। तो भोक्ता सभी को भय देता है और स्वयं पराधीन रहता है। क्यों? जो दूसरे को भय देगा वह स्वयं स्वाधीन कैसे हो सकता है?

इस दृष्टि से अगर आप विचार करेंगे, तो जिसके जीवन में भोग की रुचि नहीं है अर्थात् जो पराधीनता में सन्तुष्ट नहीं

है, वही स्वाधीन होता है और स्वाधीन होते ही समस्त दिव्य गुण, जैसे निर्विकारता, शान्ति, समता आदि समस्त दिव्य गुण स्वतः प्राप्त होते हैं। किन्तु उनमें भी अपने को आबद्ध नहीं करना चाहिए। नहीं तो, आप दूसरों को विकारी और अपने को निर्विकार मानकर मिथ्या अभिमान में आबद्ध हो जाएंगे। अभिमान के रहते हुए परिच्छिन्नता का नाश हो जाए, पराधीनता का अत्यन्त अभाव हो जाए, यह कभी सम्भव नहीं है। इससे क्या सिद्ध हुआ ? आप स्वयं इतने सुन्दर हैं कि समस्त दिव्य गुण आपसे आश्रय पाते हैं। किन्तु जब आप अपनी सुन्दरता को भूल जाते हैं, तब गुणों का आरोप करके अपनी महिमा मानने लगते हैं। जहाँ आपने अपने सौन्दर्य को भुलाया और पराधीनता को स्वीकार किया; बस, फिर तो जीवन में अभाव ही अभाव रहेगा, और कुछ नहीं रह सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप में जो स्वाधीनता है वह आपकी उपार्जित है। यह इसका अर्थ मत लगाइए।

इसके सम्बन्ध में विचार कीजिए कि वह कौन है, जिसने आपको स्वाधीनता प्रदान की ? अगर आप इस पर विचार करेंगे, तो आपको यह मानना ही पड़ेगा कि कोई हम सबका अपना है, जिसे हम जानते नहीं हैं। आप कहें कि नहीं-नहीं, स्वाधीनता तो हमारी अपनी वास्तविकता है। तो यह तो बताओ भाई, पराधीनता में आबद्ध क्यों हो गए ? तब आप कहेंगे कि भूल से। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि आप में भूल है, आप भूल सकते हैं। जब आप भूल सकते हैं और कहीं फिर भूल गए तो ? तो पराधीन हो जाएंगे कि नहीं ? इससे यह सिद्ध होता है कि भूल तो हमारी उत्पन्न की हुई है और भूल

मिटाने के लिए जो विवेक रूपी प्रकाश मिला है वह किसी की देन है। जिसकी वह देन है वही आपका अपना है। आपने स्वयं उसको भुलाया है, उसने आपको नहीं भुलाया। सोचें, वह कौन हमारा अपना है कि जिसने हमें स्वाधीनता के साम्राज्य में प्रवेश कराया है ? यदि आप उसमें आत्मीयता स्वीकार करते हैं आस्थापूर्वक, श्रद्धापूर्वक, विश्वासपूर्वक; तो बड़ी ही सुगमता से आपमें जो प्रियता की मांग है उसकी प्राप्ति होती है। तात्पर्य क्या निकला ? काम की निवृत्ति, जिज्ञासा की पूर्ति और प्रियता की प्राप्ति में ही मानव-जीवन की पूर्णता है। इस पूर्णता से किसी भी भाई को, किसी भी बहन को किसी भी परिस्थिति में और कभी भी निराश नहीं होना चाहिए।

जब हम वास्तविक जीवन से निराश नहीं होते, तब अपने आप उस जीवन की मांग ममता, कामना के त्याग की शक्ति प्रदान करती है। यह मांग की महिमा है कि वह काम को खा लेती है और जब काम को खा लेती है, तब मांग पूरी होती है। किन्तु आज हम इस रहस्य को भूल जाते हैं और सोचने लगते हैं कि भला, हम साधारण आदमियों को इस परिस्थिति में क्या निर्विकारता मिल सकती है, परम शान्ति मिल सकती है, हम स्वाधीन हो सकते हैं ? अरे भाई, क्यों नहीं हो सकते ? बताओ तो सही कि इस कारण से हम नहीं हो सकते।

आजकल लोग क्या कहते हैं ? ममता कैसे छूटेगी, कामना कैसे मिटेगी ? अजी, ममता अगर अपने आप छूटती, तो होती ही नहीं। क्यों ? जो चीज आपने बनाई है उसको कोई और

नहीं मिटा सकता। वस्तु आपको मिली, किन्तु उसको आपने अपनी मान लिया। अपनी मर्जी से, कि किसी के कहने से ? यह जानते हुए भी कि जो मिला है वह सदैव नहीं रहता। किस भाई को किस बहन को इस बात का ज्ञान नहीं है कि यहां आकर बैठे हैं और उठना पड़ेगा, जो मिला है अलग होगा। बहुत सी ऐसी चीजें थीं जो आपको मिली थीं, और आज नहीं हैं। तो बताइए, जब आप यह जानते ही हैं, तो इस जाने हुए का अनादर करके आपको कैसे निर्विकारता, परम शान्ति, स्वाधीनता मिलेगी ? नहीं मिलेगी। इससे क्या सिद्ध हुआ ? कि जाने हुए का आदर अनिवार्य है प्रत्येक भाई और बहन के लिए। इसमें कोई कन्सेशन नहीं होगा। आप यह सोचें कि हम जाने हुए का आदर बिना करे निर्विकारता, परम शान्ति और स्वाधीनता को प्राप्त कर लें। कभी नहीं कर सकते।

जाने हुए का आदर करने पर आपको निर्विकारता न मिले, परम शान्ति न मिले, स्वाधीनता न मिले, यह हो ही नहीं सकता। तो मूल प्रश्न क्या रहा ? हमें और आपको केवल जाने हुए का आदर करना है, कोई नई बात नहीं जानना है। यह जो भ्रम हो गया है कि हम पोथी पढ़ कर या किसी सत्पुरुष के पास जा कर कोई नई बात जानेंगे, यह बड़ी भ्रमात्मक धारणा है। हां, जाने हुए में जो विकल्प करते हैं, वह नहीं रहेगा। अगर किसी ग्रन्थ से कोई लाभ होता भी है, किसी गुरु से कोई लाभ होता भी है, तो केवल इतना ही होता है कि हम अपने आप अपने जाने हुए में विकल्प कर लेते हैं और किसी महा पुरुष ने कह दिया कि नहीं भाई, इसमें विकल्प न करो। ठीक है। या किसी ग्रन्थ में आपने पढ़ लिया कि विकल्प

करना ठीक नहीं है, तो आपने जाने हुए का आदर कर लिया। बस, फिर आप निर्विकार हो सकते हैं, आपको शान्ति मिल सकती है, आपको स्वाधीनता मिल सकती है। इन बातों के लिए आपको किसी पर विश्वास नहीं करना है, कोई और प्रयास नहीं करना है। केवल जाने हुए का आदर करने से ही आपको निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता मिल सकती है।

जाने हुए का आदर करना और ममता, कामना का त्याग करना, बिल्कुल एक ही बात है। जैसे, आप यह जानेंगे कि मिला हुआ अपना नहीं है। यह तो ज्ञान हुआ कि मिला हुआ अपना नहीं है। इसका फल क्या हुआ ? निर्ममता। अब आप देखिए, "मैं निर्मम हूं," ऐसा चिन्तन भी नहीं करना पड़ेगा। केवल यह जानना ही है कि मिला हुआ मेरा अपना नहीं है। मिला हुआ मेरा अपना नहीं है, यह बात तो आप जानते हैं। इस जानने में ही विकल्प रहित होना है।

हां भैया ! मिला हुआ मेरा नहीं है और सभी कामनाएं पूरी नहीं होतीं। आप भी जानते हैं कि पूरी नहीं होतीं। जो नहीं होती उसको जमा क्यों रखना ? अर्थात् मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा कुछ नहीं है—यह किसका परिणाम है ? यह इस बात का परिणाम है कि आप जानते हो कि जो मिला है वह सदैव नहीं रहेगा; अतः मेरा नहीं है। सभी कामनाएं पूरी नहीं होतीं; अतः मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा कुछ नहीं है—क्या इस ज्ञान में जीवन नहीं है ? है। परन्तु हम विकल्प कर बैठते हैं और सोचने लगते हैं कि

किसी पोथी को पढ़ेंगे, तब हमारे जीवन में निर्ममता आएगी। किसी गुरु के पास जाएंगे, तब हम निष्काम हो जाएंगे। यदि किसी दूसरे के द्वारा निर्ममता और निष्कामता मिल सकती होती, तो संसार में ऐसे-ऐसे उदार हैं जो आपको निष्कामता, निर्ममता प्रदान कर देते। दूसरे लोग परामर्श दे सकते हैं, इस बात का समर्थन कर सकते हैं। पर आपकी ममता आपको छोड़नी है, न अपने आप मिटेगी और न उसे कोई छुड़ा पाएगा।

अब आप सोचिए कि आप कब तक अशान्ति में, विकारों में, पराधीनता में रहना चाहते हैं ? यह मत सोचिए कि हम कब निर्विकार होंगे, कब हमें शान्ति मिलेगी, कब हम स्वाधीन होंगे। यह न सोच कर यह सोचिए कि भाई, कितने दिन हो गए पराधीनता में रहते हुए, अशान्ति के साथ रहते हुए, विकारों में आबद्ध रहते हुए ! अब तो हमको विकारों में आबद्ध नहीं रहना है, पराधीन नहीं रहना है, अशान्ति नहीं रखना है। जब आपने यह निर्णय किया कि नहीं रखना है, तब आपके लिए निर्ममता, निष्कामता क्या कठिन होगी भैया ? बिल्कुल कठिन नहीं होगी, सहज होगी, सुगम होगी, अत्यन्त सुगम होगी। किन्तु आप सोचते क्या हैं ? क्या बताएं, ममता नाश नहीं होती, कामना नाश नहीं होती ! तो अपने आप ममता और कामना कभी नाश नहीं होती, यह आप भी जानते हो और मैं भी कह दूं कि नहीं होगी।

यदि आप यह चाहते हैं कि ममता और कामना का नाश हमें करना है, तो अभी कर सकते हैं। और अपने द्वारा ही कर सकते हैं। आप कहेंगे, ऐसा कहने मात्र से क्या हो जाएगा कि मेरा

नहीं है ? तो मैं आपसे पूछता हूँ कि यह जो विकार उत्पन्न हुआ है वह कहने मात्र से हुआ है या कोई विकार जैसी चीज आपने देखी है क्या ? बताइए जरा। जब आप वस्तु को अपना मानते हैं, तब लोभ आता है। जब आप किसी व्यक्ति को अपना मानते हैं, तब मोह की उत्पत्ति होती है। क्या बिना अपना मानें मोह की उत्पत्ति होती है ? आप कहेंगे, वस्तु को अपना न मानें, तो उसकी सुरक्षा कैसे होगी, उसका उत्पादन कैसे होगा ? भाई देखो, अपना मानने से सुरक्षा होती, तो बहुत सी वस्तुएं आज आपके पास नहीं रहीं। क्या किया, क्या सुरक्षा की आपने ? मैंने तो कभी नहीं सोचा था कि आँखें मेरी नहीं हैं, लेकिन कहाँ हैं ? किसी बुड्ढे ने कभी नहीं सोचा था कि जवानी मेरी नहीं है, पर वह जवानी कहां है ? जरा विचार तो कीजिए।

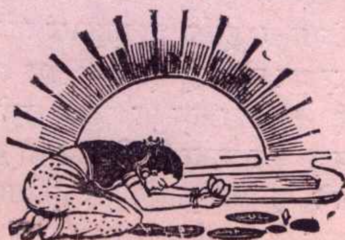
आपके अपना न मानने से वस्तु नहीं रहेगी अथवा मानने से रहेगी, यह कोई सिद्धान्त नहीं है। अपना मानो तो और अपना न मानो तो, वस्तु के रहने और न रहने में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। किन्तु अपना न मानने से निर्विकारता मिलेगी। कामना के त्याग से शान्ति मिलेगी। कामना से कामना पूरी होती हो, ऐसा नियम नहीं है। कामना यदि पूरी होती है तो विधान से, कामना से नहीं। वस्तु यदि रहती है तो विधान से, ममता से नहीं। तो जब हम और आप इस बात को जानते ही हैं कि ममता और कामना से केवल अशान्ति और विकारों की ही उत्पत्ति होती है और उससे कोई लाभ नहीं होता। तो जिससे कोई लाभ नहीं होता और बहुत बड़ी क्षति होती है, आज उसके लिए आप कहते हैं कि बड़ा कठिन है। यानी देखिए, तीन बातें हैं—कर सकते हों, परम लाभ हो, कोई हानि

नहीं हो। फिर भी न करें, तो इससे बढ़ कर बेसमझी क्या होगी ? कौनसा गुरु आपको ऐसा ज्ञान देगा, कौनसी पोथी आपको ऐसा पथ दिखाएगी कि जब आप यह कहेंगे कि हां, अब हम कामना और ममता को छोड़ सकते हैं ? जबकि आप छोड़ सकते हैं और आप जानते हैं कि इससे बड़ी भारी क्षति है, हानि है। छोड़ देंगे क्या ? नहीं छोड़ पाएंगे। अर्थात् यह कार्य आपको अभी-अभी करना होगा, अपने द्वारा करना होगा। आप कर सकते हैं।

अब आप सोचिए कि जिसे आप अपने द्वारा अभी कर सकते हैं, उसको कभी पर छोड़ देना, इससे बढ़ कर क्या कोई असावधानी, जड़ता, प्रमाद हो सकता है ? आपको मानना पड़ेगा, नहीं हो सकता। इसलिए भाई, अभी-अभी अपने ही द्वारा यह अविचल निर्णय कीजिए—मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। उसके पश्चात् निर्विकारता और शान्ति में रमण मत कीजिए। जब निर्विकारता और शान्ति में रमण नहीं करेंगे, तब असंगता अपने आप आएगी। असंगता के लिए आपको प्रयास नहीं करना है, वह अपने आप आएगी। जब असंगता अपने आप आएगी, तो असंगता के आते ही अवस्था-तीत, परिस्थिति-अतीत, वस्तु-अतीत जीवन से अभिन्नता अपने आप होगी। किन्तु यदि उसमें भी आपने यह स्वीकार कर लिया कि, मैं सन्तुष्ट रहूंगा यानी स्वाधीनता में सतुन्ष्ट रहूँगा, चिन्मय जीवन में सन्तुष्ट रहूंगा, अमर जीवन में सन्तुष्ट रहूँगा—तो आप में यह भेद बना रहेगा कि मैं मुक्त जीव हूँ और सब बद्ध जीव हैं, मैं गुरु हूँ और सब शिष्य हैं, मैं विशेष हूँ और सब सामान्य हैं।

इस प्रकार के भेद का नाश कब होगा ? कि असंगता से जो स्वाधीनता प्राप्त हो उसमें भी सन्तुष्ट नहीं होना है । अर्थात्, मैं स्वाधीन हूँ—इस प्रकार के महत्व का अपने में आरोप नहीं करना है । अथवा यों कहो कि स्वाधीनता का भी भोग नहीं करना है । स्वाधीनता का भोग न करने पर आप पराधीन हो जाएंगे, ऐसी बात नहीं है । पर एक बात हो जाएगी कि अहंभाव रूपी जो अणु है वह नाश हो जाएगा । उसके नाश होते ही आपके जीवन में स्वत: प्रेम का प्रादुर्भाव होगा । यह नहीं कि आप प्रेम न चाहें, तो आपको प्रेम न मिले । सत्य कहते ही उसको हैं कि जो न चाहने पर भी मिलता है और असत्य कहते ही उसको है जो चाहते हुए भी नहीं मिलता ।

अत: प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहन को निर्विकारता, परम शान्ति, स्वाधीनता और अगाध प्रियता अवश्य प्राप्त होगी । पर कब ? जब जाने हुए असत् का त्याग करें तब । इस दृष्टि से यदि हम और आप विचार करेंगे, तो यह निर्विवाद सिद्ध हो जाएगा कि सत्संग में ही सर्वतोमुखी विकास निहित है ।।ॐ।।



३३

(ब)

प्रवचन :

सच बात तो यह है कि हम लोग अपने को सामने रख कर नहीं सोचते। उसका परिणाम यह हुआ है कि साधक यह नहीं जान पाता कि मेरी अपनी वास्तविक समस्या क्या है। करना, जानना और मानना—इन तीनों प्रकार की शक्तियों में प्राणी रमण करता है। करने का अर्थ है, जिससे किसी का अहित न हो। जानने का अर्थ है, जिससे निस्संदेहता प्राप्त हो जाए। और मानने का अर्थ है, जो अविचल श्रद्धा जागृत कर दे। इन तीनों की एकता में साधन की पूर्णता और साधन की पूर्णता में सिद्धि।

हम और आप जो कुछ करते हैं, उससे किसी का अहित तो नहीं होता, किसी को हानि तो नहीं पहुंचती, किसी का अनादर और तिरस्कार तो नहीं होता? इस बात पर अगर आप ध्यान देते हैं, तो आप सचमुच अपने कर्त्तव्य को जानते हैं। जब प्राणी यह भूल जाता है कि हम जो कुछ कर रहे हैं उससे दूसरे का भले ही अहित हो, पर हमें तो करने में ही रस मिलता है, सुख मिलता है। यह बात जब तक जीवन में

रहती है, तब तक मनुष्य की तो कौन कहें, हम अपने को पशु संज्ञा में भी नहीं रख सकते। पशु जानबूझ कर किसी को हानि नहीं पहुंचाता। वह तो प्रकृति के विधान में बंधा हुआ सुख-दुख भोगता है। उसमें यह शक्ति नहीं है कि वह भूखा हो, उसकी भोजन सामग्री मौजूद हो और न खाए, यह सामर्थ्य पशु में नहीं है। भूख न हो और खाए, यह सामर्थ्य भी उसमें नहीं होती। इसलिए पशु जीवन में कर्त्तव्य का प्रश्न नहीं है।

कर्त्तव्य का प्रश्न उसी जीवन में आता है कि जिस जीवन में हित और अहित का, भले और बुरे का, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान है। वह ज्ञान जिसे हम कर्त्तव्य का ज्ञान कहते हैं मानवमात्र में मौजूद है। ध्यान दीजए, ज्ञान एक प्रकार का प्रकाश है। ज्ञान किसी पर शासन नहीं करता। यदि ज्ञान शासन करता होता, तब तो जीवन में अकर्त्तव्य का प्रश्न ही नहीं आता। आप कहेंगे कि भाई, ज्ञान को शासन करना चाहिए। जो शासन करता है वह हमेशा जड़ता में आबद्ध रहता है। ज्ञान तो पथ-प्रदर्शन करता है, आपको कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य ठीक-ठीक बताता है। आप उसकी बात मानें, न मानें, इसमें आप स्वाधीन हैं। इसलिए प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहन को करने से पूर्व अपने ज्ञान के प्रकाश में उन संकल्पों को रखना चाहिए, जिन्हें पूरा करना चाहते हैं।

संकल्प पूर्ति के प्रलोभन में प्राणी कभी-कभी वह कर बैठता है जो उसे नहीं करना चाहिए। यदि जीवन में-से संकल्प-पूर्ति का प्रलोभन निकल जाए, तो फिर अकर्त्तव्य का जन्म ही न हो। जो कुछ [illegible] जीवन में आती है, वह तभी आती है, जब हम

अपने संकल्प को पूरा करने में लग जाते हैं और दूसरे के संकल्प पर ध्यान नहीं देते । यद्यपि संकल्प-पूर्ति में जो महत्व है वह तभी है, जब जिनके द्वारा संकल्प की पूर्ति हो वह संकल्प उनका संकल्प हो जाए। तब संकल्प-पूर्ति में जो रस आता है वह रस और किसी प्रकार से नहीं आता । अगर आप बोलना चाहते हैं, तो किसी श्रोता का भी संकल्प होना चाहिए । अगर आप मिलना चाहते हैं, तो किसी मिलने वाले का भी संकल्प होना चाहिए । अगर आप सुनना चाहते हैं, तो किसी वक्ता का भी संकल्प होना चाहिए ।

अपने में संकल्प उत्पन्न हो जाए और जिन साधनों से उसकी पूर्ति होती है, वे साधन उपस्थित न हों, तो उस दशा का नाम ही दरिद्रता है, अभाव है । इसलिए प्रत्येक भाई और बहन को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि संकल्प-पूर्ति से जो कुछ मिलता है वह सदैव नहीं रहता । इस कारण संकल्प-पूर्ति का उतना महत्व नहीं है, जितना हम लोग मान लेते हैं । इतना ही नहीं, संकल्प निवृत्ति से जो शान्ति मिलती है, जो शक्ति मिलती है, जो स्वाधीनता मिलती है, वह शान्ति, वह शक्ति, वह स्वाधीनता किसी भी संकल्प की पूर्ति से नहीं मिलती । इस अद्‌भुत विधान पर जब हम विचार करते हैं, तो एक ऐसा अनुपम प्रकाश मिलता है कि प्रत्येक भाई, प्रत्येक बहन उस जीवन को बड़ी ही सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं जो जीवन वास्तविक जीवन है ।

इसी आधार पर संकल्प-निवृत्ति का बहुत बड़ा महत्व है । परन्तु लोग सोचते हैं कि जब तक संकल्प पूरा न हो, तब

तक तो जीवन ही कुछ नहीं है और इस बात को भूल जाते हैं कि संकल्प-पूर्ति में पराधीनता सदैव रहती है। कल्प-पूर्ति का सुख स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रहने देगा। इस रहस्य को जान पर हमें अपने सभी संकल्प, यदि हम भौतिक दर्शन पर विश्वास करते हैं, तो समाज के संकल्पों में विलीन कर देना चाहिए। यदि हम अध्यात्म दर्शन पर विश्वास करते हैं, तो सभी संकल्पों से असङ्ग हो जाना चाहिए। यदि हम आस्तिक दर्शन में श्रद्धा रखते हैं, तो प्रभु के संकल्प में अपने संकल्प विलीन कर देना चाहिए। तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक संकल्प-निवृत्ति की सामर्थ्य आ जाएगी।

संकल्प-निवृत्ति की सामर्थ्य हमें जड़ता से चेतना की ओर, पराधीनता से स्वाधीनता की ओर और असत् से सत् की ओर अग्रसर करेगी। परन्तु यह भी एक बड़ी दुर्गम घाटी है। संकल्प-निवृत्ति की शान्ति में रमण न करें, यह बड़ी महत्व की बात है। क्यों ? संकल्प-निवृत्ति की शान्ति में दुख की निवृत्ति है, परन्तु अहं की निवृत्ति नहीं है। लोग सोचने लगते हैं कि मुझको कुछ नहीं चाहिए, मैं शान्त हूँ। मैं शान्त हूँ यानी शान्ति का भोग। शान्ति का जो भोग है वह सुख के भोग से बहुत ऊँचा भोग है, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु भोग है और भोग होने के नाते उसमें परिवर्तन भी होता है। इसलिए शान्ति का सम्पादन तो आवश्यक है, परन्तु शान्ति का भोग आवश्यक नहीं है।

अब आप कहेंगे कि भाई, शान्ति का सम्पादन तो कर लिया, पर भोग से कैसे बचें ? तो उसका महत्व अपने से अधिक न मान लें। ऐसा सोचें कि जैसे संकल्प पूर्ति का सुख एक अवस्था है, किन्तु उसमें पराधीनता है। ऐसे ही संकल्प-निवृत्ति

की शान्ति भी एक अवस्था है। अवस्था जो होती है वह सदैव परप्रकाश्य होती है, स्वयं प्रकाश नहीं होती। यह नियम है कि जो वस्तु परप्रकाश्य होती है, उसमें परिवर्तन स्वभाव से ही होता है। इस कारण शान्ति का सम्पादन करना है, पर रमण नहीं करना है। तब स्वाधीनता प्राप्त होती है।

स्वाधीनता वह जीवन है जिसमें अभाव और जड़ता की गन्ध भी नहीं है। उस स्वाधीनता को प्राप्त करने में प्रत्येक वर्ग का मानव, प्रत्येक देश का मानव, प्रत्येक समाज का मानव स्वाधीन है। स्वाधीन है स्वाधीनता प्राप्त करने में। क्योंकि स्वाधीनता का साधन भी स्वाधीन ही है। स्वाधीनता प्राप्त कब होती है? जब पराधीनता सहन न हो। बस, यही इसका साधन है। जो पराधीनता सहन नहीं कर सकता उसी को स्वाधीनता मिलती है।

अब आप कहेंगे कि पराधीनता किसको सहन नहीं होती? जो सुख की दासता और दुख के भय से मुक्त है। सुख की दासता रहते हुए प्राणी पराधीनता में ही जीवन-बुद्धि रखता है। दुख का भय रहने से भी प्राणी पराधीनता की ओर ही अग्रसर होता है। तो दुख का भय न हो और सुख का प्रलोभन न हो। दुख का भय कैसे मिटे? दुख के स्वरूप को जानने से। दुख क्या है, इस पर विचार करो। जब हमारे-आपके मन की बात पूरी नहीं होती, तभी दुख का अनुभव होता है। उदाहरण लीजिए, लोग कहते हैं कि मुझको यहाँ आराम करना चाहिए और मेरे मन में यह बात आ जाए कि मुझको यहाँ से जाना है, तो रहना दुख बन जाए। मान लीजिए, मैं यहाँ रहना चाहूँ और लोग कहें कि चले जाओ,

तो जाना दुख हो जाए। अब आप सोचिए कि यदि रहने में दुख था, तो जाने में दुख क्यों मालूम हुआ और जाने में दुख था, तो रहने में दुख क्यों मालूम हुआ ? इससे यह सिद्ध होता है कि जब हमारे-आपके मन की बात पूरी नहीं होती; तभी दुख का अनुभव होता है। पराधीनता में जीवन-बुद्धि स्वीकार करना ही दुख है। है पराधीनता, लेकिन मालूम होता है कि इसी में जीवन है, यही जीवन है।

अच्छा मकान नहीं मिला तो जीवन नहीं रहा, अच्छे कपड़े नहीं मिले तो जीवन नहीं रहा, अच्छा भोजन नहीं मिला तो जीवन नहीं रहा। इसका अर्थ कोई भाई, कोई बहन यह न समझ बैठे कि मैं यह चाहता हूँ कि लोगों को अच्छा मकान न मिले, कपड़े न मिलें भोजन न मिले। ऐसा मेरा मतलब नहीं है। मतलब केवल इतना है कि थोड़ा विचार करो। पराधीनता में जीवन है, इसी का नाम दुख है और इसी का नाम सुख भी है। आप विचार करो। सुख-दुख के स्वरूप में कोई भेद नहीं है। इसलिए आप देखेंगे कि जब तक सुख रहता है, तब तक दुख रहता ही है और जब तक दुख रहता है, सुख रहता ही है। ऐसा आप कभी जीवन में नहीं देखेंगे कि दुख रहे और सुख न हो और सुख रहे और दुख न हो, ऐसा कभी नहीं देखेंगे। यदि आपको सुख का अनुभव होता है, तो दुख का अनुभव जरूर होगा। अगर आपको दुख का अनुभव होता है, तो सुख का अनुभव जरूर होगा। क्यों ? जब मन में कोई बात उठी और जब तक वह पूरी नहीं होती, आप दुख का अनुभव करेंगे और जब पूरी होगी, तब आप सुख का अनुभव करेंगे।

संकल्प पूरा होने का सुख तभी अनुभव होगा, जब संकल्प

उठने का दुख अनुभव करोगे । बड़ी विचित्र बात है कि दुख का अनुभव किये बिना सुख का अनुभव होता ही नहीं और सुख का भोग दुख को जन्म बिना दिये रहता नहीं । यह ऐसी पहेली है कि न जानें, इसमें कितने जन्म बीत गए । लोग सुख के सम्पादन करने का प्रयत्न करते रहे और दुख से बचने की सोचते रहे । किन्तु सुख से बचने की नहीं सोची, इसलिए दुख से नहीं बच सके । अगर आप सचमुच दुख से बचना चाहते हैं, तो सुख से बच जाइए । जीने की आशा छोड़िए, मरने का भय गया । संयोग का सुख छोड़िए, वियोग का भय गया । आप सोचिए ।

सुख से बचने का प्रयास नहीं किया, इसलिए दुख भोगना पड़ा । अगर आप यह चाहते हैं कि आपको दुख न भोगना पड़े, तो सुख से छुटकारा लीजिए । सुख से छुटकारा लेने का उपाय है, पराए दुख से दुखी होना । पहला उपाय स्थूल उपाय । दूसरों के दुख से जितना आप दुखी होंगे, उतना ही आप सुख से छूट जाएंगे । दूसरी बात, बेमन का जीवन, बेसाथी का जीवन, बेसामान का जीवन । आप कहेंगे, अजीब पागल आदमी है । भला जिस जीवन में कोई सामान नहीं, जिस जीवन में साथी नहीं, जिस जीवन में मन नहीं, वह भी कोई जीवन है ? परन्तु किसके लिए ? जो सुख-दुख दोनों से छुटकारा पाना चाहता है उसके लिए ।

अब यह बात इतनी कठिन मालूम होती है । अगर अपने जीवन को सामने रख कर इसको सोचें कि बेसामान का जीवन कैसा होगा । वह जीवन शरीर रहित होगा, शरीर सहित नहीं होगा । अब कोई कहे कि शरीर रहित जो जीवन है, क्या शरीर

के रहते हुए उसका अनुभव हो सकता है ? हो सकता है । इसमें लेशमात्र भी सन्देह की बात नहीं है । शरीर रहित जीवन का अनुभव शरीर के रहते ही हो सकता है । पर है भाई बड़ी कठिन बात । किस दृष्टि से कठिन है ? इस दृष्टि से कठिन है कि शरीर को सुरक्षित रखने के लिए ही जीवन भर प्रयत्न चलता रहा और अब एक दम यह बात सामने आजाए कि भाई, हमको शरीर के रहते हुए शरीर रहित जीवन चाहिए ।

शरीर के रहते हुए शरीर से रहित जीवन कब मिलेगा ? जब कर्म, चिन्तन और स्थिति, तीनों से असंगता प्राप्त हो । कर्म से सम्बन्ध न रहे, चिन्तन से सम्बन्ध न रहे और स्थिति से भी सम्बन्ध न रहे । कोई-कोई दर्शनकार तो शरीर से रहित जीवन से इतने घबरा गए कि वे यह सोचने लगे कि वह जो अमरत्व है उसकी अभिव्यक्ति इसी शरीर में होनी चाहिए । ऐसा लोगों ने सोचा ।

एक बात तो सोचिए कि शरीर रहित जीवन में और शरीर सहित जीवन में अन्तर क्या है ? अन्तर केवल इतना है कि शरीर रहित जीवन ही सच पूछिए तो जीवन है और शरीर सहित जीवन तो जीवन की लालसा है । बहुत पहले किसी मित्र को पत्र लिखा था, जिसमें यह बात लिखी थी कि वर्तमान परिवर्तनशील जीवन नित्य जीवन का साधन है, जीवन नहीं ।

साधन का महत्व साध्य से भी अधिक होता है । परन्तु किसलिए ? साध्य की उपलब्धि के लिए । इस दृष्टि से इस मानव-जीवन की बड़ी महिमा गाई है । इसका अर्थ यह नहीं है

कि महिमा शरीर की है। यह महिमा इस बात की है कि इसी जीवन में वास्तविक जीवन की प्राप्ति हो सकती है। यह जो वर्तमान जीवन है, इसके तीन फील्ड हैं—कर्म का क्षेत्र, चिन्तन का क्षेत्र और स्थिति का क्षेत्र; स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत, कारण जगत, इन तीनों से असंग होना है। कैसे ? चाह रहित होकर। देखो, कैसी विचित्र बात है कि चाह रहित होने से असंगता प्राप्त होती है। तात्पर्य क्या ? अचाह, अप्रयत्न और अभिन्नता—यह हुई साधन सामग्री।

अब बताइए, इस साधन में कहाँ पराधीनता है ? चाह रहित होने में कोई पराधीन नहीं, अप्रयत्न होने में कोई पराधीन नहीं और अभिन्न होने में कोई पराधीन नहीं। इसलिए भाई, यदि आप इस मानव जीवन का महत्व सचमुच जानना चाहते हैं, तो चाह रहित होने में है। अब चाह रहित कैसे हों ? इसका बड़ा सीधा-सादा उपाय है। आप स्वयं अपने विचार से इस बात को जानें कि चाह का उद्गम स्थान क्या है ? तो मानना पड़ेगा कि किसी-न-किसी प्रकार की स्वीकृति अथवा दृश्य के साथ तादात्म्यभाव। स्वीकृति के दो भाग हैं, एक वह भाग जो कर्त्तव्य का प्रतीक है और एक वह भाग जो भोग की रुचि को जन्म देता है।

कर्त्तव्य की प्रतीक कौन सी स्वीकृति है ? जिस स्वीकृति को आपने प्रकाशित किया है। भोग की रुचि किससे उत्पन्न होती है ? जिससे आपने तद्रूपता स्वीकार की है, तादात्म्य भाव, देह के साथ तादात्म्य भाव। इस स्वीकृति ने भोग की रुचि को जन्म दिया। साधनरूप मान्यता की जो स्वीकृति है,

जैसे आप किसी के भाई हैं, किसी के पुत्र हैं, किसी के पिता हैं, किसी के मित्र हैं, किसी संस्था के सदस्य हैं, किसी समाज के व्यक्ति हैं इत्यादि--इत्यादि। यह जितनी भी स्वीकृतियाँ हैं वे सब कर्त्तव्य की प्रतीक हैं। इन स्वीकृतियों के आधार पर आपको दूसरों के अधिकारों की रक्षा करना है, जिससे जो विद्यमान राग है वह नाश हो जाए और अपने अधिकार का त्याग करना है जिससे कि नवीन राग की उत्पत्ति न हो जाए।

साधनरूप स्वीकृतियां अभिनय के स्वरूप में पूरी हो सकती हैं और तादात्म्यरूप जो स्वीकृतियां हैं वे निज-विवेक से मिट सकती है। निज विवेक के प्रकाश में जब आपने 'यह' से अपने को अलग जाना क्या जाना, यह बात नहीं। इसमें जरा दार्शनिक द्वन्द्व है। कोई कहेगा कि मैं जीव हूँ, कोई कहेगा कि मैं ब्रह्म हूँ। यह सब विश्वास मार्ग है। पर इस बात को सभी कहेंगे कि "यह", "मैं" नहीं है। इसमें किसी का द्वन्द्व नहीं है। तो "यह", "मैं" नहीं है, इसका फल यह होगा कि भोग की रुचि का नाश हो जाएगा। भोग का नाश हो जाएगा, यह मत सोचिए। भोग की रुचि का नाश। भोग माने, सुख-दुख रहेगा, पर भोग की रुचि नहीं रहेगी।

भोग की रुचि का नाश होने से सहज योग। सहजयोग माने, वह योग जिसमें श्रम अपेक्षित नहीं है, वह प्राप्त होगा। उस सहज योग से ही "यह", "मैं" नहीं है, इस बात का दृढ़ बोध होगा। तो फिर "मैं" है क्या ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि "मैं" माने, अनन्त की प्रीति। आप लोग भी सोचिए। अगर आपको यह मालूम हो कि "मैं" माने, आत्मा

या "मैं" माने, ब्रह्म या "मैं" माने, जीव। अपने को इसमें विरोध नहीं है। लेकिन जीव किसे कहेंगे आप ? प्रभु के प्रेम का नाम जीव होगा। आत्मा किसे कहेंगे आप ? आत्मा का अर्थ होता है कि जिससे भिन्नता स्वीकार न हो सके; जिससे भिन्नता न हो सके और जिससे विभाजन न हो सकें। जिससे विभाजन नहीं होता, वह है प्रेम। प्रेम ही एक ऐसा तत्व है कि जो विभाजन नहीं होने देता।

'यह' से अतीत जो हैं वह है, 'हैं' का प्रेम। प्रेम कोई श्रम तो है नहीं भाई, कोई अभ्यास भी नहीं है, कोई विचार भी नहीं है। लेकिन एक बात सोचिए कि प्रेम स्वभाव से ही रसरूप है; रसरूप होने से काम का नाशक है और काम का नाशक होने से निर्विकार है। तो वह निर्विकार जीवन जो कि रसरूप है, कब प्राप्त होता है ? 'यह' से तादात्म्य न रहने पर। 'यह' से तादात्म्य भाव कैसे नाश होता है ? निज ज्ञान के प्रकाश से, और किसी प्रकार से नहीं।

निज ज्ञान का प्रकाश तीन भागों में बट जाता है— कर्त्तव्य में, असंगता में और विश्वास में। आप कहेंगे, कैसे ? विवेक विरोधी कर्म का जो त्याग है इसी का नाम है, कर्त्तव्य विज्ञान। विवेक विरोधी विश्वास का जो त्याग है उसी का नाम है, प्रभु विश्वास। विवेक विरोधी सम्बन्ध का जो त्याग है उसी का नाम है, समाधि से असंगता, सभी अवस्थाओं से असंगता। यह तीन बातें—अवस्थाओं से असंगता, विवेक विरोधी कर्म का त्याग, और विवेक विरोधी विश्वास का अभाव। जहां विवेक विरोधी कर्म का त्याग हुआ कि सुन्दर

समाज का निर्माण हो गया। जहां विवेक विरोधी विश्वास का त्याग हुआ कि निर्विकार जीवन प्राप्त हो गया। जहां विवेक विरोधी सम्बन्ध का त्याग हुआ कि सद्गति हो गई।

आप सोचिए—सद्गति, निर्विकारता और कर्त्तव्यपरायणता, यह तीनों बातें एक ही जीवन में हैं; तीन जीवन में नहीं। इसका चित्र क्या बनता है? कर्त्तव्यपरायणता से तो शरीर विश्व के काम आजाता है, निर्विकारता से हृदय प्रेम से भर जाता है और असंगता से निरभिमानता आजाती है। तो जीवन का चित्र क्या बना? शरीर विश्व के काम आजाए, हृदय प्रेम से भर जाए और अहं अभिमान शून्य हो जाए, अभिमान रहित हो जाए। यह है, आपका अपना मानव जीवन। इस जीवन की प्राप्ति में हम सब सर्वदा स्वाधीन हैं। इसका साधन है—चाह रहित होना, प्रयत्न रहित होना और अभिन्न होना।

कोई और है नहीं, तो अभिन्नता होगई। कोई और नहीं है, इस अभिन्नता में जो रस है वह बड़ा ही विलक्षण रस है। किसी और की सत्ता ही स्वीकार नहीं की, तो अहं का नाश हो गया, दूरी मिट गई, भेद मिट गया। अथवा यों कहो कि योग, ज्ञान, प्रेम की अभिव्यक्ति हो गई। लेकिन यह अभिन्नता अप्रयत्न के बिना ठहरती नहीं। तो साधन निकला—चाह रहित होना। चाह रहित हो कर हम सब वर्तमान में ही वास्तविक जीवन को प्राप्त कर सकते हैं। यह बात मैंने आपको अपनी ओर से निवेदन की। मैं यह सोचता हूँ कि किसी बात को दोहराने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा ॥ॐ॥



३४

(अ)

प्रवचन :

उपस्थित महानुभाव !

बड़े हर्ष की बात है कि अनन्त की अहैतुकी कृपा से आज हमें और आपको परस्पर में पुनः विचार-विनिमय करने का सुअवसर मिला है। अभी हमने-आपने सुना कि साधनयुक्त जीवन ही मानव जीवन है। बात बड़ी सुन्दर है, सच्ची है और हम सबकी अपनी है। यह बात किसी और की बात नहीं है, मानवमात्र की अपनी बात है। इस दृष्टि से अब यह विचार करना होगा कि हमारे और आपके जीवन में असाधन का नाश और साधन की अभिव्यक्ति कैसे हो ?

इस मूल प्रश्न पर विचार करते हुए संघ की नीति ने यह बात बताई कि समस्त असाधनों की उत्पत्ति का कारण असत् का संग है और समस्त साधनों की अभिव्यक्ति सत् के संग में निहित है। इसी सिद्धान्त के आधार पर अभी जो जयपुर में विचार-विनिमय हुआ था और संघ की बैठक हुई थी, उसमें यह बात सभी ने बड़ी ईमानदारी से स्वीकार की कि अब आवश्यकता इस बात की हो गई है कि प्रत्येक भाई

और प्रत्येक बहिन के लिए व्यक्तिगत रूप से और पारिवारिक रूप से सोने से पहले और उठने के बाद पहला कार्य सत्संग हो। तभी हम सबका जीवन साधननिष्ठ हो सकता है।

अब आप कहेंगे कि सत्संग का अर्थ क्या है, सत्संग किसे कहते हैं? सत्संग का अर्थ यह नहीं है कि कोई व्यक्ति विशेष आ गया, उसने एक व्याख्यान दे दिया और हम सब लोगों ने श्रवण कर लिया। यह तो सत्संग का सहयोगी साधन है। वास्तव में यह सत्संग नहीं है। सत्संग का वास्तविक स्वरूप है, अपने जाने हुए असत् का त्याग। किसी और के बनाए हुए असत् का त्याग नहीं, किसी और के सिखाए हुए असत् का त्याग नहीं, माने हुए असत् का भी नहीं, अपने जाने हुए असत् का त्याग। आप कहेंगे कि क्या माना हुआ भी असत् होता है? हमने ऐसी बातें सुनी हैं कि जिनमें यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि यह माना हुआ असत् है। जैसे, किसी ने कह दिया कि हाथी के पैर से दब जाना अच्छा है, लेकिन जैन मन्दिर में घुस कर बचना अच्छा नहीं है। यह क्या है? यह माना हुआ असत् है, यह वास्तविक असत् नहीं है।

मानव सेवा संघ की नीति में इस बात का बड़ा ध्यान रखा गया है कि हमें इससे मतलब नहीं कि आपका मत क्या है, आपका सम्प्रदाय क्या है, आपकी विचारधारा क्या है। इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हमें तो यह देखना है कि आपकी विचारधारा, आपका मत, आपके सम्प्रदाय ने आपको सच्चे माने में मानव बनाया या नहीं। आप इतने सुन्दर हो गए कि नहीं कि आपकी सभी को मांग रहे और आपकी अपनी कोई मांग

न रहे। यही मानव का चित्र है। मानव उसे नहीं कहते, जो अपने लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। मानव उसे भी नहीं कहते, जो जगत के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ और भाई, सच बात तो यह है कि मानव उसे भी नहीं कहते, जो प्रभु के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ।

चाहे जिस मत का मानव हो, चाहे जिस वर्ग का मानव हो, चाहे जिस विचारधारा का मानव हो, वही मानव है कि जो अपने लिए, जगत के लिए और प्रभु के लिए उपयोगी सिद्ध हो जाए। ऐसा जो मानव जीवन है, यह जीवन मानवमात्र को प्राप्त होना चाहिए। किन्तु दुख की बात तो यह है कि आज हम अपना मूल्यांकन करते समय इस बात को तो भूल जाते हैं और यह सोचते हैं कि हम तभी बड़े आदमी हो सकेंगे, जब हमको अमुक पद की प्राप्ति हो जाएगी। अथवा हम तभी ठीक-ठीक आदमी हो सकेंगे, जब हमारे पास बहुत-सा सामान हो जाएगा अथवा हम तभी बड़े आदमी हो सकेंगे, जब हमारे साथ एक बहुत बड़ा संगठन होगा।

इन सब बातों को सामने रख कर हम मानव जीवन का मूल्यांकन करते हैं। परिणाम उसका यह होता है कि हमारा और आपका जीवन वस्तुओं की, व्यक्तियों की, विचारधाराओं की, परिस्थितियों की आसक्ति में इतना आबद्ध हो जाता है कि जिस निर्विकारता को प्राप्त करने के लिए जीवन मिला था, वह निर्विकारता तो आती नहीं; किन्तु ऐसे विचार आ जाते हैं कि जो ऊपर से निर्विकारता का भेष बनाते हैं और यह बताते हैं कि हम ठीक बात कहते हैं, हम ठीक बात जानते हैं,

हमारा मत बहुत अच्छा है, हमारी विचारधारा से ही संसार का हित होगा। किन्तु स्वयं ? स्वयं का तो हित नहीं हुआ।

इस मूल समस्या को हल करने के लिए यह आवश्यकता हो गई कि जो असाधन जीवन में उत्पन्न हो गए हैं, उनका नाश हो जाए और उस स्थान पर साधन की अभिव्यक्ति हो जाए। साधन का अर्थ यह नहीं है कि जिसमें लेशमात्र भी अस्वाभाविकता हो। साधन का अर्थ यह भी नहीं है कि जिसमें असमर्थता हो और साधन का अर्थ यह भी नहीं है कि जिसमें असिद्धि हो। साधन वही साधन है, जिसमें स्वाभाविक प्रियता हो।

साधन वही है, जो अपनी सामर्थ्य के अनुरूप हो और जिसमें सिद्धि हो। इस दृष्टि से आज हमको और आपको विचार-विनिमय करना है। उस साधन की अभिव्यक्ति किसी मत विशेष में ही होती हो, ऐसा मेरा अपना विश्वास नहीं है। उस साधन की अभिव्यक्ति किसी मत में न होती हो, ऐसा भी मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास है कि उस साधन की अभिव्यक्ति प्रत्येक मत में हो सकती है, प्रत्येक काल में हो सकती है और प्रत्येक परिस्थिति में हो सकती है। परन्तु कब ? जब वह मत मानव का अपना मत हो।

आप कहेंगे कि अपने मत का अर्थ क्या है ? अपने मत का अर्थ यह है कि जिस मत का प्रादुर्भाव हमारे और आपके जीवन से हो, वह है अपना मत। उस मत का हमें और आपको ज्ञान कैसे हो ? इसके लिए ही यह बात बताई गई कि यदि हमें और आपको अपने जीवन में कोई अपना जाना हुआ असत्

दिखाई देता हो, समझ में आता हो, तो उसका त्याग करें। त्याग करने का अर्थ क्या है ? भूतकाल की घटनाओं के आधार पर वर्तमान को दोषी न मानें, पहली बात तो यह है और उस भूल को पुनः न दोहराएं। इसका नाम है, जाने हुए असत् का त्याग। मान लो कि कल मुझको क्रोध आ गया और यदि मैंने अपने अहंभाव में यह बात अंकित कर ली कि मैं क्रोधी हूँ, तो सच मानिए, क्रोध का नाश नहीं होगा। तो करना क्या चाहिए ? भाई, कल मुझे क्रोध आ गया था और क्रोध जो है वह तो असाधन है। क्यों ? क्योंकि क्रोध आने पर कर्त्तव्य की विस्मृति होती है, स्वरूप का प्रमाद होता है और प्रेम का नाश होता है। इतनी बातें क्रोध से होती हैं, यह बड़ा असाधन है। अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। तो यह त्याग हो गया। लेकिन उसी समय, मुझमें क्रोध नहीं है, इसकी दृढ़ स्थापना भी करना है।

आप कहेंगे कि अब मैं क्रोधी नहीं हूँ, इससे क्या लाभ होगा ? इससे क्या लाभ होगा, यह तो आपका जीवन बताएगा, आपका भविष्य बताएगा। यदि आपने वर्तमान में निर्दोषता की स्थापना की है अपने जाने हुए दोष के त्याग से, तो आप सच मानिए कि आप निर्दोष हो जाएंगे। क्यों निर्दोष हो जायेंगे ? इसमें एक दार्शनिक रहस्य है और वह यह है कि दोषों की स्वतन्त्र सत्ता है नहीं। कोई भी दोष स्वतन्त्र सत्ता वाला नहीं है। इसका एक जीता-जागता उदाहरण देखिए, आप अपने सम्बन्ध में सोचिए अथवा किसी अन्य के सम्बन्ध में सोचिए। यद्यपि संघ की नीति में किसी अन्य के सम्बन्ध में सोचने का कोई मूल्य

नहीं है, किन्तु हम लोग आदी हो गए हैं दूसरों को सामने रख कर सोचने के। आप अपने सम्बन्ध में अथवा दूसरों के सम्बन्ध में सोचेंगे, तो आपको यह प्रकाश मिलेगा कि कोई भी व्यक्ति सर्वांश में दोषी नहीं होता, सर्वदा दोषी नहीं होता और सभी के लिए दोषी नहीं होता। क्या कारण है भाई ? उसका कारण और कुछ नहीं है, उसका एकमात्र कारण यही है कि किसी भी दोष की स्वतन्त्र सत्ता होती ही नहीं। जिसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, वह सर्वांश में हो ही नहीं सकता और सर्वदा रह नहीं सकता। सभी के प्रति उसका उपयोग भी नहीं हो सकता।

इसलिए भाई, इस दार्शनिक दृष्टिकोण को सामने रखते हुए हमको और आपको कभी भी इस बात से निराश नहीं होना चाहिए कि निर्दोषता हमारा जीवन नहीं है, निर्दोषता हमारे वर्तमान की वस्तु नहीं है या निर्दोषता से हमारी अभिन्नता नहीं हो सकती। इस बात से कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। जब हम और आप इस बात से निराश नहीं होंगे, तब क्या होगा ? दार्शनिक भेद से उस निर्दोषता का हम और आप अपना अलग-अलग अर्थ लगाएंगे।

आस्तिक दर्शन पर श्रद्धा रखने वाला कहेगा कि निर्दोषता का अर्थ है, प्रभु की प्राप्ति या प्रेम की प्राप्ति। अध्यात्म दर्शन वाला कहेगा कि निर्दोषता का अर्थ है, स्वाधीनता की प्राप्ति। भौतिक दर्शन वाला कहेगा कि निर्दोषता का अर्थ है, चिर-शान्ति तथा सुन्दर समाज का निर्माण। लेकिन जरा सोचो तो सही भाई, मानव जीवन में क्या इन सभी दर्शनों की मांग नहीं है ? अगर हम-आप विचार करेंगे तो मानव जीवन में इन तीनों ही दर्शनों

का समावेश है, तीनों ही दर्शन मानव जीवन में हैं, तीनों ही की हमें आवश्यकता है।

जब इन तीनों ही की हमें आवश्यकता है, तो फिर मानव दर्शन क्या हुआ, मानव दर्शन का चित्र क्या बनेगा ? मानव दर्शन का चित्र हुआ कि मानव दर्शन सुन्दर समाज का निर्माण भी हो सकता है, अपना कल्याण भी हो सकता है, परम प्रेम की अभिव्यक्ति भी हो सकता है। यह हुआ मानव दर्शन। जब यह मानव दर्शन है, तो हम सबकी इससे एकता भी हो सकती है, उसकी प्राप्ति भी हो सकती है। जब उसकी प्राप्ति हो ही सकती है, तो फिर उससे निराश होना भूल है।

दूसरी बात सोचिए कि प्राप्ति उसकी नहीं होती, जो वर्तमान में नहीं है। प्राप्ति उसी की होती है, जो 'है'। अच्छा, जिसको आप 'है' कहेंगे, वह अविनाशी सिद्ध होगा, और जो अविनाशी सिद्ध होगा, उससे देश-काल की दूरी नहीं रहेगी। जिससे देश-काल की दूरी नहीं है, उसकी प्राप्ति में असमर्थता, पराधीनता हो ही नहीं सकती। पराधीनता और असमर्थता किसकी प्राप्ति में होती है ? जिससे देश की, काल की दूरी हो। तो सत् से न देश की दूरी हो सकती है, न काल की दूरी हो सकती है। जिससे देश-काल की दूरी नहीं हो सकती, उसकी प्राप्ति में सभी स्वाधीन है, लेकिन एक ही पराधीन है। कौन पराधीन ? जो प्राप्त करने से इन्कार कर दे, निराश हो जाए। अथवा वह पराधीन, जो अपने जाने हुए असत् का त्याग न कर सके। बाकी तो सत्य की प्राप्ति में सभी भाई, सभी बहन सर्वदा स्वाधीन हैं।

इस दृष्टि से आज यह मौलिक प्रश्न हमारा और आपका अपना प्रश्न हो जाता है। यह किसी और का प्रश्न नहीं है। मानव सेवा संघ की नीति में हमें किसी और का प्रश्न हल करना है, यह दम्भ नहीं है। उसमें तो स्पष्ट है कि हमें अपना प्रश्न हल करना है और हमारे प्रश्न के हल होने में हमारा जीवन अपने लिए, जगत के लिए, प्रभु के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। यदि हमने अपना प्रश्न हल नहीं किया, तो न तो हमारा जीवन हमारे लिए उपयोगी होगा, न जगत के लिए उपयोगी होगा और न प्रभु के लिए उपयोगी होगा।

ऐसा अनुपम अनूठा जीवन हमें और आपको मिला है कि जो सभी के लिए उपयोगी हो सकता है। उस जीवन का महत्व हम वस्तुओं के आधार पर न आंकें, पद के आधार पर न आंकें और परिस्थिति के आधार पर न आंकें। वस्तुओं की दासता, पद की दासता, परिस्थिति की दासता मानव को मानव नहीं होने देती।

इस बात पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात् जो मुझे प्रकाश मिला है वह यह है कि हम मानव होने के नाते बड़े ही सुन्दर हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। आप जानते हैं कि जो स्वयं सुन्दर है उसे किसी और से सुन्दरता नहीं लेनी पड़ती, अपितु उसकी सुन्दरता से और सुन्दर होते हैं। अतः मानव अपनी सुन्दरता से वस्तुओं में सुन्दरता प्रदान कर सकता है, परिस्थिति को सुन्दर बना सकता है, व्यक्तियों को सुन्दरता बांट सकता है, पद को सुन्दर बना सकता है अपनी सुन्दरता से।

जब हम अपनी सुन्दरता से परिस्थिति को सुन्दर बनाने की बात समझ जाएंगे, तब सच पूछिए, हम सब निर्दोष सिद्ध होंगे। किन्तु आज यह पराधीनता कि हाय ! हाय !! क्या बताएं, अमुक संकल्प पूरा नहीं हुआ, तो मानो, जीवन में कुछ रहा ही नहीं। भाई, जरा सोचो तो सही, ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसके अनेकों संकल्प पूरे न हुए हों ? अनेकों संकल्प हम सबके पूरे हुए हैं। क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति होगा, जो यह कहे ईमानदारी से कि मेरे सभी संकल्प पूरे हो गए ? नहीं मिलेगा। कैसा मिलेगा ? कुछ संकल्प पूरे भी हुए, पर सभी पूरे नहीं हुए। इसमें रहस्य क्या है ? इसमें बड़ा रहस्य यह है कि संकल्प पूरा करना जीवन नहीं है। लेकिन जीवन का एक भाग है कि जिस राग का नाश विचार से न कर सकें, तो भाई, करके देख लो। पर पूरा करने में ही आबद्ध न हो जाएं, इसके लिए प्रकृति का यह विधान बन गया कि भैया, सभी संकल्प तो पूरे नहीं होंगे। हमारे संकल्पों का पूरा न होना हमारे लिए पथ प्रदर्शन है, इससे तो हमें प्रकाश मिलता है। संकल्प का पूरा होना जो है वह हमें एक आश्वासन देने वाली बात है, जीवन नहीं है।

इसलिए भाई, हमें और आपको इस बात पर विशेष ध्यान देना है कि संकल्प पूर्ति मानव जीवन नहीं है। किन्तु कोई यह कहे कि संकल्प पूर्ति का जीवन में स्थान क्या है ? तो संकल्प पूर्ति का स्थान इतना ही है कि हमारा कोई भी संकल्प ऐसा न हो, जो समाज का संकल्प नहीं है—भौतिक दर्शन। हम संकल्प पूर्ति की वासना से सर्वदा मुक्त हों—अध्यात्म दर्शन।

हमारा संकल्प प्रभु के संकल्प में विलीन हो जाए—आस्तिक दर्शन।

इस दृष्टि से आज हमें और आपको निर्विकल्प होना है। हम और आप संकल्प पूर्ति में पराधीन हो सकते हैं। लेकिन क्या निर्विकल्प होने में भी पराधीन हो सकते हैं ? आप जरा विचार तो करें। अल्प काल की निर्विकल्पता क्या चिर शान्ति में प्रवेश नहीं कराती ? कराती है। किन्तु अभी तक हमने यह सोचा ही नहीं कि जीवन में निर्विकल्पता का भी कोई महत्व है। जब सोचा तब यही सोचा कि हमारा अमुक संकल्प पूरा हो जाए, हमारा अमुक संकल्प पूरा हो जाए। यह सोचते-सोचते और संकल्प पूर्ति के सुख का भोग करते-करते तथा संकल्प अपूर्ति के दुख का भोग करते-करते न जाने कितने जीवन बीत गए ! इस पर चाहे किसी भाई को विश्वास न हो, पर इस बात पर तो विश्वास होगा ही कि इस जीवन का बहुत बड़ा भाग इसी संकल्प पूर्ति-अपूर्ति की द्वन्द्वात्मक स्थिति में ही बीत गया। किन्तु इससे अतीत भी कोई जीवन है, इस पर दृष्टि ही नहीं गई।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि हम सब मानव हैं और मानव होने के नाते उत्पन्न हुए असाधन का नाश कर सकते हैं। उत्पन्न हुए असाधनों का नाश होते ही स्वतः स्वाभाविक रूप से अपने आप साधन की अभिव्यक्ति हो सकती है। साधन की अभिव्यक्ति होने पर साधन अभिमान के रूप में नहीं रहता, यह बड़ी सुन्दर बात है। जब साधन अभिमान के रूप में नहीं रहता, तब साधक और साधन में दूरी और भेद नहीं रहता।

जब साधक और साधन में दूरी और भेद नहीं रहता, तब उसका जीवन स्वतः स्वाभाविक विभु हो जाता है, विधान हो जाता है। वह चाहे हिमालय की कन्दरा में बैठा हो अथवा चाहे आजकल की पद्धति के अनुसार प्राइम मिनिस्टर बन कर संसार का बड़े-से-बड़ा काम कर रहा हो। दोनों ही का आन्तरिक जीवन एक हो जाता है। दोनों ही से समाज का हित होता है, उनका अपना हित तो होता ही है।

इसलिए भाई, हम सबका जो आन्तरिक जीवन है, आज हमें उसकी ओर दृष्टि डालना है। बाह्य जीवन की ओर देखते-देखते न जानें कितनी कठिनाइयों का हमने सामना किया और कितना बड़ा-बड़ा पुरुषार्थ किया महाराज! हमारे बहुत-से साथी फांसी के तख्तों पर झूल गए, हमारे बहुत से साथियों ने वर्षों कारागार की वेदना सही, हमारे बहुत-से साथियों के घर बर्बाद हो गए इस बाह्य जीवन के परिवर्तन के प्रयास में। किन्तु वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं देखा। इसलिए भाई, विवश हो कर आज यह बात माननी पड़ती है कि हम सबका जो आन्तरिक जीवन है, जो वास्तविक जीवन है, जिस जीवन के बिना जीवन नहीं है, उस जीवन को प्राप्त करने के लिए हम सबको साधननिष्ठ होना है और साधननिष्ठ होने में हम पराधीन नहीं हैं, असमर्थ नहीं हैं। परन्तु भाई, उसके लिए हमको और आपको अपने-अपने जाने हुए असत् का त्याग करना होगा। अगर आप कहें कि भाई, हम असत् को असत् जान तो लेते हैं।

अभी २७ तारीख को राष्ट्रपति भवन में, एक हमारे

मित्र की प्रेरणा से या कैसे, मैं वहां गया। हमारे पुराने परिचित भाई मैथिलीशरण गुप्त भी वहां बैठे थे। प्रश्न-उत्तर का सत्संग था। मैंने उनसे कहा कि आप कोई प्रश्न कीजिए, शिष्टाचार के नाते जैसे प्रायः लोग कह देते हैं। तो उन्होंने कहा कि पथ प्रदर्शन कीजिए। मैंने कहा कि चलने की रुचि में पथ का दर्शन है, पथ दिखाई देता है। इस प्रश्न को आदरणीय राजेन्द्र प्रसाद बाबू जी ने अपना प्रश्न बनाया और यह बात स्वीकार की कि चलने की रुचि भी है, पथ भी दिखाई देता है; किन्तु चल नहीं पाते। बड़ी सुन्दर बात कही उन्होंने और बड़ी सच्ची बात कही। यह बात उन्हीं की अपनी बात हो, ऐसा नहीं है। किसी-न-किसी अंश में हम सबकी ही यह बात है। मैंने कहा कि न चलने की वेदना में चलने की सामर्थ्य निहित है। वे प्रसन्न हो गए, शान्त हो गए, गम्भीरता से विचार करने लगे।

भाई, यह बात नहीं है कि हम और आप अपने जाने हुए असत् का त्याग नहीं कर सकते। लेकिन उस असत् का त्याग न होने की व्यथा कितनी है और असत् के संग द्वारा सुख-लोलुपता कितनी है? इन दो बातों को सामने रख कर सोचिए। आज हमें अपने जाने हुए असत् के त्याग में जो कठिनाई मालूम होती है, उसका कारण और कोई नहीं है। असत् जनित सुखलोलुपता और उसके त्याग न होने की व्यथा, इन दोनों में देखना होगा कि किसका पल्ला भारी है। सच मानिए, असत् का त्याग न होने की व्यथा से असत् का त्याग स्वतः हो जाएगा। यदि असत् के संगजनित सुख का प्रलोभन है तो भाई, जाने हुए का प्रभाव नहीं होगा। जब तक जाने हुए का प्रभाव

नहीं होता, तब तक मिले हुए का सदुपयोग नहीं होता। यह बड़ा भारी सत्य है।

गम्भीरता से विचार करें कि जाने हुए के प्रभाव के बिना, मिले हुए का सदुपयोग सम्भव नहीं है और मिले हुए के सदुपयोग के बिना, कर्त्तव्यपरायणता आ ही नहीं सकती। कर्त्तव्यपरायणता के बिना, न अपना कल्याण हो सकता है, न सुन्दर समाज का निर्माण हो सकता है। इस दृष्टि से हम और आप गम्भीरतापूर्वक सोचें कि भाई, जाने हुए का प्रभाव जीवन में क्यों नहीं है ? उसका उत्तर मुझको यही जान पड़ता है कि केवल इसलिए नहीं है कि अधूरे ज्ञान से उत्पन्न होने वाला जो सुख है, उस सुख का प्रलोभन हम नहीं छोड़ते।

सुख को हम न छोड़ें, पर सुख तो हमें छोड़ ही देता है, उसे तो हम पकड़ सकते ही नहीं। यह बड़ी विचित्र बात है कि हम सुख को नहीं पकड़ सकते। हम नहीं छोड़ेंगे, तो वह हमें छोड़ देगा। लेकिन हम उसका प्रलोभन पकड़े रहते हैं। एक ही बात में इसको कहा जाए, तो सुख का प्रलोभन रखते हैं। आप कहेंगे कि सुख क्या चीज है ? संकल्प पूर्ति। और सुख कुछ नहीं है। आप भी विचार कर लें। सुख के सम्बन्ध में मैंने बहुत सोचा है। सच पूछिए तो मेरे जीवन का पहला प्रश्न ईश्वर प्राप्ति नहीं था, न सद्‌गति प्राप्ति का ही था। मेरे जीवन का पहला प्रश्न ही यह था कि क्या कोई ऐसा सुख हो सकता है, जिसमें दुख न हो ? यह जीवन का पहला प्रश्न था।

सुख के सम्बन्ध में मैंने दिन-रात सोचा है, महीनों-वर्षों

सोचा है। किन्तु भाई, मुझे तो पराधीनता के अतिरिक्त सुख का और कोई स्वरूप दिखाई नहीं दिया। यद्यपि आज हमारे बहुत से साथी जब अध्यात्म चर्चा करना शुरू करते हैं, तो वे कहते हैं कि हम सब सुख चाहते हैं और सुख के साथ विशेषण लगाते हैं—अक्षय सुख, नित्य सुख और परम सुख इत्यादि। लेकिन सच पूछा जाए और हम-आप अपने-अपने जीवन को सामने रख कर सोचें, तो सुख का भास कब होता है? जब मन की बात पूरी हुई। जब तक मन की बात पूरी नहीं होती, तब तक सुख का भास होता है क्या? मन की बात पूरी हो और जीवन में पराधीनता न आए, मन की बात पूरी हो और जीवन में जड़ता न आए, मन की बात पूरी हो और नवीन बात मन में उत्पन्न न हो जाए, क्या यह सम्भव है? कभी सम्भव नहीं है।

इसलिए मेरे भाई, सुख का जो प्रलोभन है, यही वास्तव में असाधन है। अगर असाधन के स्वरूप का वर्णन करते हुए उस पर विचार किया जाए, तो एक ही वाक्य में यही कहना पड़ेगा कि सुख के प्रलोभन का ही दूसरा नाम असाधन है। अब सुख के प्रलोभन का नाश कैसे हो? यह प्रश्न पैदा होता है। सुख के प्रलोभन का नाश होता है, दुख के प्रभाव से। जरा ध्यान दीजिए, दुख के प्रभाव से, दुख के भोग से नहीं। दुख के भोग से तो सुख की रुचि जाग्रत होती है, स्थायी होती है। किन्तु दुख के प्रभाव से सुख के प्रलोभन का नाश होता है।

आप कहेंगे कि दुख का भोग और दुख के प्रभाव में क्या अन्तर है? बड़ा अन्तर है। दुख का प्रभाव सुख में दुख का

दर्शन कराता है और दुख का भोग सुख की दासता में आबद्ध करता है, व्यर्थ चिन्तन में आबद्ध करता है, वस्तु-व्यक्ति आदि का दास बनाता है दुख का भोग। हाय! हाय!! क्या करें, अमुक व्यक्ति होता तो यह दुख न होता, अमुक वस्तु होती तो यह दुख न होता, अमुक परिस्थिति होती तो यह दुख न होता। तो दुख का भोग मनुष्यता नहीं है। दुख के प्रभाव में मनुष्यता है।

दुख का प्रभाव जिस पर हो जाए, तो मेरा ऐसा ख्याल है कि दुखहारी उसके पास आ जाते हैं आस्तिक दृष्टिकोण से। दुख का प्रभाव जिस पर हो जाए, तो उसके दुख की निवृत्ति हो जाती है आध्यात्मिक दृष्टिकोण से। तात्पर्य क्या निकला कि दुख के प्रभाव की आवश्यकता है। अब दुख का प्रभाव कितने दुख के बाद जीवन में होगा, बस यही व्यक्तिगत बात है। यह सामूहिक बात नहीं है। जैसे आँख में जरा सी मिट्टी करक जाती है महाराज, और पैर पर सेर भर रख दो, करक सकती है क्या? यह तो व्यक्ति की अपनी-अपनी बनावट है कि किस व्यक्ति पर दुख का प्रभाव कितने दुख के बाद होगा? व्यक्तिगत दुख से दुख का प्रभाव होगा, कि कौटुम्बिक दुख से दुख का प्रभाव होगा अथवा सामाजिक दुख से दुख का प्रभाव होगा या और किसी प्रकार के दुख से दुख का प्रभाव होगा, यह बात व्यक्तिगत है। किन्तु दुख हम सबके जीवन में है, इस बात को कोई भी भाई, कोई भी बहन इन्कार नहीं कर सकते। अगर कोई भाई या बहन कहे कि हमारे जीवन में दुख नहीं है, तो मैं कहूँगा कि या तो तुम परमात्मा हो, क्योंकि

उसके पास कोई दुख नहीं है या तुम पत्थर के टुकड़े हो, उसके पास भी दुख नहीं है।

मनुष्य हो और कहे कि हमारे जीवन में दुख नहीं है, यह हो नहीं सकता। हाँ, दुख तो है, किन्तु उस दुख का प्रभाव नहीं है। दुख के प्रभाव का न होना महान दुख की बात है भाई। बड़ी ही शोचनीय बात है, बड़ी बिकट बात है कि दुख है और दुख का प्रभाव नहीं। इसलिए भाई, दुख का प्रभाव जीवन में हो और सुख का उपयोग जीवन में हो।

आप कहेंगे कि सुख का प्रभाव क्या है ? सुख के प्रभाव ने तो सर्वनाश किया है। सुख का तो हो उपयोग। सुख का उपयोग मालूम है कैसे होता है ? पराए दुख से दुखी होने पर, पराए दुख से दुखी हो जाओ। मैं तो मजाक में लोगों से कहता हूँ कि तुम्हारी आँखें अन्धे के लिए हैं, तुम्हारा धन निर्धन के लिए है, तुम्हारा बल निर्बल के लिए है, तुम्हारी योग्यता अयोग्य के लिए है। अगर तुम ऐसा नहीं करोगे, तो स्वयं योग्य होते हुए अयोग्य सिद्ध हो जाओगे, बल के रहते हुए निर्बल सिद्ध हो जाओगे, आँखों के रहते हुए अन्धे सिद्ध हो जाओगे.। बात बड़ी सच्ची है।

मैं आपसे पूछता हूँ, जरा विचार तो करो। जो बल आपको प्राप्त है, जो वस्तु आपको प्राप्त है, उसका उपयोग किसके साथ करोगे भैया ? बल का उपयोग क्या समान बल वाले के साथ करलोगे ? अधिक बल वाले के साथ तो कर नहीं सकते। योग्यता का उपयोग विशेष योग्यता वाले के साथ करलोगे क्या ? नहीं कर सकते। वस्तु का उपयोग क्या उसके

साथ करोगे, जिस पर तुमसे अधिक वस्तु है ? नहीं कर सकते। वस्तु का उपयोग किए बिना, योग्यता का उपयोग किए बिना, सामर्थ्य का उपयोग किए बिना आप अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकेंगे क्या ? आप आदर और प्यार पा सकेंगे क्या ? आपका अस्तित्व रह सकेगा क्या ? नहीं रह सकता, कदापि नहीं रह सकता। इसलिए भाई, वस्तु का उपयोग करो, वस्तु-जनित सुख का उपयोग करो उसके साथ कि जिसके पास वस्तु नहीं है। योग्यताजनित सुख का उपयोग करो उसकी सेवा में, जिसके पास योग्यता नहीं है। सामर्थ्यजनित सुख का उपयोग करो उसकी सेवा में जिसके पास सामर्थ्य नहीं है। यह क्या है ? यह सुख का सदुपयोग है। अब आप कहेंगे कि दुख का प्रभाव क्या है ?

कल मैं एक बहन से बात कर रहा था। शायद वे यहाँ होंगी भी। उनका चित्त बड़ा दुखी था। किस बात से दुखी था ? जैसा कि हिन्दू समाज नारी का आदर नहीं करता ईमानदारी के साथ। तो वे वेचारी इस दुख से दुखी थीं कि उसके घर के लोग उसे खर्च नहीं देते, तो बड़ा दुख था। उसने आवेश में आकर मुकद्दमा लड़ा, डिग्री भी कराली। लेकिन जैसा कि मैं कहता हूँ कि मातृशक्ति का आदर ही नहीं है। तो डिग्री कराने से भी उसे रुपया नहीं मिला। वे बेचारी बड़ी दुखी थीं। मुझसे पूछा, मैं क्या करूं ? भाई, जैसा कि मेरा स्वभाव है, मैंने कहा यदि तुम्हारे मन में रुपया का महत्व है, तो दुर्गा बन कर उसकी छाती पर चढ़ जाओ कि तेरे बाप को खा लिया, तुझे भी खालूंगी, नहीं तो रुपया दे। चौबीस घंटे ऐसा करो। यदि तुममें मातृशक्ति है, माता कहते किसे हैं ?

भाई, जो करुणा की प्रतीक हो, जो स्नेह की प्रतीक हो। तो सचमुच तुम स्नेह की प्रतीक हो सकती हो, करुणा की प्रतीक हो सकती हो। तो कह दो कि बेटा, तेरी सौ बार गरज हो तो देना। खाते-खाते आखिर मर जाऊँगी, तो भूखी मरने में मेरा क्या बिगड़ता है ? उन्होंने कहा कि महाराज ! मुझे बड़ा प्रकाश मिला, सन्तोष हुआ। अब इन दो में-से जो मेरा मन करेगा, वही कर डालूंगी। महाराज ! एक दम उनका चित्त शान्त हो गया।

कहने का मेरा तात्पर्य यह था कि दुख के प्रभाव का अर्थ क्या है ? अगर जीवन में दुख का प्रभाव हो जाए, तो जिसे हम सुख कहते हैं, उसमें साक्षात् दुख का दर्शन होगा। क्यों ? दुख का प्रभाव संयोग में वियोग का, जीवन में मृत्यु का, घर में वन का दर्शन करा देता है। जिस वक्त संयोग में वियोग का दर्शन होता है महाराज ! नित्य योग के हम अधिकारी हो जाते हैं। जिस समय सुख में दुख का दर्शन होता है, उस समय दुख-निवृत्ति के अधिकारी हम हो जाते हैं। जिस समय जीवन में मृत्यु का दर्शन होता है, उस समय हम अमरत्व के अधिकारी बन जाते हैं। इस दृष्टि से दुख के प्रभाव में समस्त विकास और सुख के सदुपयोग में समस्त विकास।

अब भैया सोचो तो सही, हमारी-आपकी परिस्थिति है क्या ? आपको मानना ही पड़ेगा कि किसी अंश में सुखमय है और किसी अंश में दुखमय है। कोई भाई, कोई बहन किसी भी विचारधारा के हों, किसी भी मत और सम्प्रदाय को मानते हो, परिस्थिति में तीसरी चीज नहीं बता सकते। कोई ऐसी

परिस्थिति नहीं बता सकते कि जिसमें सुख-दुख न हो। सभी परिस्थितियाँ सुख-दुख से युक्त हैं। जब सभी परिस्थितियाँ सुख और दुख से युक्त हैं, तो मानव जीवन परिस्थितियों के भोग के लिए नहीं है, परिस्थितियों की दासता के लिए नहीं है। मानव जीवन है, परिस्थिति के सदुपयोग के लिए।

परिस्थिति के सदुपयोग की दृष्टि से प्रत्येक परिस्थिति समान अर्थ रखती है। जब प्रत्येक परिस्थिति समान अर्थ रखती है, तब हम साधननिष्ठ नहीं हो सकते, हमें सत्य नहीं मिल सकता, यह बात बनती नहीं है। क्यों ? सदुपयोग की दृष्टि से तो सभी परिस्थितियाँ समान हैं। कल्पना करो कि यदि हम अन्धे होने की परिस्थिति का सदुपयोग नहीं कर सकते, तो क्या आप जानते कि आँखों के होने की परिस्थिति का सदुपयोग कर सकते हैं ? कभी नहीं कर सकते।

इसलिए भाई, यह तो प्रभु का मंगलमय विधान है आस्तिक दृष्टिकोण से, प्राकृतिक विधान है भौतिक दृष्टिकोण से कि जो परिस्थिति आपको प्राप्त है, उसके सदुपयोग के द्वारा परिस्थिति से अतीत के जीवन में प्रवेश हो सकता है, जो हम सबका वास्तविक जीवन है। एक सुखी सुख का दुरुपयोग करके उस दुखी से बहुत पीछे है, जिसने दुख का सदुपयोग किया है। इस दृष्टि से हम सुखी हैं तो मानव, दुखी हैं तो मानव। सुख-दुख के होने से अपना कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। बनता-बिगड़ता है, सुख-दुख के सदुपयोग न करने से। सुख-दुख का सदुपयोग न करना, यह हमारी असावधानी है, यह हमारी भूल है। वास्तव में यह कोई प्राकृतिक दोष नहीं है कि हम और

आप आये हुए सुख का, आये हुए दुख का सदुपयोग नहीं कर सकते। अवश्य कर सकते हैं।

सुख के सदुपयोग का मूल मन्त्र है, उदारता और दुख के सदुपयोग का मूल मन्त्र है, त्याग। त्याग का अर्थ है, अहं और मम् का नाश। उदारता का अर्थ है, करुणा और प्रसन्नता से युक्त जीवन। तो आप अहं और मम् का नाश करके भी उसी जीवन को प्राप्त कर सकते हैं कि जिस जीवन को सुखी करुणा और प्रसन्नता के द्वारा प्राप्त कर सकता है। क्योंकि करुणा और प्रसन्नता से भी निर्विकार जीवन की उपलब्धि होती है और अहं-मम् के नाश से भी निर्विकार जीवन की उपलब्धि होती है।

जब सुख-दुख दोनों के सदुपयोग का एक ही फल है, तो सोचो भाई, दुखी क्या सुखी से कम है और सुखी क्या दुखी से कम है ? कोई किसी से कम नहीं, कोई ऊंचा नहीं, कोई नीचा नहीं, कोई भला नहीं, कोई बुरा नहीं। क्यों ? अगर हम सुखी हैं और उसका सदुपयोग करते हैं, तो बुरे हो ही नहीं सकते, नीचे हो ही नहीं सकते। अगर हम दुखी हैं और दुख का सदुपयोग कर सकते हैं, तो हम बुरे हो ही नहीं सकते, नीचे हो ही नहीं सकते।

वह जीवन जिसमें ऊंचाई-निचाई, भलाई-बुराई नहीं है, क्या ऐसा जीवन हम सबको प्रिय नहीं है ? अवश्य है। किन्तु आज हमने मानव जीवन का महत्व मानव होने के नाते न मान

कर, परिस्थितियों के आधार पर अंकित किया है। उसका परिणाम यह हुआ कि आज हम परिस्थितियों की दासता में इतने आबद्ध हो गए कि जो परिस्थिति प्राप्त है, उसका सदुपयोग नहीं कर सके और सदुपयोग न करने से उत्कृष्ट परिस्थिति प्राप्त नहीं कर सके, परिस्थिति की दासता से मुक्त भी न हो सके। इस असावधानी को मिटाने के लिए चाहे हमारे और आपके बीच में अनेक भेद हों, कोई चिन्ता की बात नहीं; किन्तु मानवता के नाते प्रीति का भेद न हो। प्रीति की एकता को लेकर हम और आप परस्पर में विचार-विनिमय करें और अपने-अपने जाने हुए असत् का त्याग करके असाधन का नाश करें। असाधन का नाश वर्तमान की वस्तु है। असाधन के नाश में ही साधन की अभिव्यक्ति निहित है।

इस दृष्टि से हम सबका वर्तमान सरस हो सकता है। जब वर्तमान सरस हो जाता है, तो किसी मनोविज्ञान के पंडित से पूछना, वर्तमान की सरसता काम का जन्म नहीं होने देती। काम का जन्म न होने पर क्या होता होगा, जरा सोचो तो सही। इसका पता कैसे चलेगा ? भाई, काम का जन्म होने से क्या होता है ? काम का जन्म होने से पराधीनता आती है, जड़ता आती है, अभाव आता है। कामना के न होने से क्या होगा ? तो स्वाधीनता आएगी, चिन्मयता आएगी और अभाव का अभाव होगा।

क्या आज हमें और आपको स्वाधीनतायुक्त दिव्य चिन्मय जीवन प्रिय नहीं है ? क्या यह हमारी अपनी मांग नहीं है ? यदि यह हमारी-आपकी अपनी मांगतो है, इसकी पूर्ति अनिवार्य

है । आवश्यकता कहते ही उसको हैं, जिसकी पूर्ति होती है और कामना कहते ही उसको है, जिसकी निवृत्ति होती हैं । प्रेम कहते ही उसको हैं, जिसकी प्राप्ति होती है । इसलिए भाई, कामना की निवृत्ति में, आवश्यकता की पूर्ति में, प्रेम की प्राप्ति में प्रत्येक भाई, प्रत्येक बहन सर्वदा स्वाधीन है और समर्थ है और इसी पवित्रतम उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव जीवन मिला है ।।ॐ।।



३४

(ब)

प्रवचन :

मैं कोई ऐसी नई बात बताने नहीं आया हूँ कि जिसे आप नहीं जानते। आपकी जानी हुई बातों को ही आपके सामने रखना है। प्राकृतिक नियमानुसार कोई भी किसी को ऐसी बात नहीं बता सकता, जो उसमें बीजरूप से नहीं है। शिक्षा का मूल मन्त्र इतना ही है कि जो चीज विद्यमान है, वह विकसित हो जाए। इस दृष्टि से आपको अपनी जानी हुई बातों का ही आदर करना है।

आप जानते हैं कि मानवमात्र यह आवश्यकता अनुभव करता है कि सुन्दर समाज का निर्माण हो और अपना कल्याण हो। यह इस जीवन का चरम लक्ष्य है। किन्तु विचार यह करना है कि अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण, क्या दो अलग-अलग बातें हैं अथवा एक है? मानवता की नीति के अनुसार तो यह दोनों बातें एक ही जीवन की हैं। जो अपना कल्याण कर सकते हैं, उन्हीं के जीवन से सुन्दर समाज का निर्माण होता है और जो सुन्दर समाज के निर्माण में लग जाते हैं, उन्हीं का अपना कल्याण भी हो जाता है। दोनों में-से एक के अपनालेने पर दोनों बातें अपने आप पूरी हो जाती हैं।

अब विचार यह करना होगा कि अपने कल्याण का अर्थ क्या है, किसे अपना कल्याण कहते हैं ? इस सम्बन्ध में मुझे ऐसा मालूम होता है कि यदि प्राणी परम शान्ति, अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता प्राप्त कर ले, तो उसे समझना चाहिए कि मेरा कल्याण हो गया। और सुन्दर समाज के निर्माण की क्या बात है भाई ? सुन्दर समाज का निर्माण किसे कहते हैं ? सुन्दर समाज का अर्थ है, जहाँ दो व्यक्तियों में, दो वर्गों में, दो देशों में परस्पर एकता हो, स्नेह हो, विश्वास हो। अनेकों भेद होने पर भी जैसे, कर्म का भेद हो, भाषा का भेद हो, रहन-सहन का भेद हो; पर प्रीति की एकता हो, विश्वास की एकता हो, लक्ष्य की एकता हो। यही सुन्दर समाज का निर्माण है।

सुन्दर समाज की पहचान यह नहीं है कि बिल्डिंग्स बहुत अच्छी हैं, सड़कें बहुत अच्छी हैं; पर चलने वाले चाहे जैसे हों, रहने वाले चाहे जैसे हों। यह सुन्दर समाज के निर्माण की पहचान नहीं है। जिस समाज को अपने लिए पुलिस की आवश्यकता होती है, न्यायशाला की आवश्यकता होती है, फौज की आवश्यकता होती है, वह सुन्दर समाज नहीं कहा जा सकता। सुन्दर समाज में तो परस्पर भेद नहीं रहता, भिन्नता नहीं रहती। हां, भिन्नता किस रूप में होती है ? जैसे आपका शरीर है, उसका प्रत्येक अवयव अलग-अलग आकृति रखता है, अलग-अलग कर्म करता है। पैर की जो आकृति है वह नेत्र की नहीं है, नेत्र की जो आकृति है वह पैर की नहीं है। नेत्र का जो कर्म है वह पैर का नहीं है और पैर का जो कर्म है वह नेत्र का नहीं है। किन्तु परस्पर में प्रीति की कितनी गहरी एकता है कि पैर में कांटा लगता है, तो आँख में आँसू निकलते हैं।

आँख में जब चोट लगती है, तो पैर लड़खड़ाता है। इसी प्रकार समस्त विश्व के साथ हमारी स्नेह की एकता हो।

किन्तु बड़े ही दुख के साथ कहना पड़ता है कि आज हम जो कि अपने को मानव कहते हैं, इन्सान कहते हैं और उसके साथ-साथ यह भी कहते हैं कि हमारा महजब, हमारा इज्म सबसे अच्छा है। मैं यह नहीं कहता हूँ कि आपका महजब और इज्म अच्छा नहीं है। सचमुच अच्छा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु भाई, सोचो तो सही कि क्या आपके महजब ने, आपके इज्म ने आपको सुन्दर बनाया या नहीं ? यदि आपका महजब सुन्दर है और उसने आपको सुन्दर नहीं बनाया, तो आप कैसे कहते हैं कि हमारा महजब है, हमारा इज्म है ?

भाई, कोई आदमी अगर यह कहे कि हमारा भोजन बहुत बढ़िया है, बड़ा ही स्वास्थ्यकर है, बड़ा ही रुचिकर है और बड़ा ही सुपच है। कोई उससे पूछे कि तुम्हारी दशा क्या है ? बोले, भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं, कमजोर हो रहे हैं, किसी काम के नहीं हैं। फिर भी तुम्हारा भोजन बढ़िया है ?

आज यह रोग लग गया है कि विचारों का भेद, मान्यताओं का भेद, कर्म का भेद, भाषा का भेद, पद्धतियों का भेद होने पर हम परस्पर में घोर संघर्ष करते हैं। परन्तु इस बात को नहीं सोचते कि प्रकृति की रचना क्या है ? बहुत गम्भीरता से विचार करें कि किसी एक वृक्ष के दो पत्ते भी सर्वांश में एक नहीं होते, किसी-न-किसी अंश में भिन्नता अवश्य होगी। भिन्नता है तो इतनी और एकता है तो कितनी ?

आज सभी से पूछा जाए कि भाई, सच बताओ कि तुम क्या चाहते हो, तुम्हारी मांग क्या है ? तो आप सच मानिए कि कोई भी भाई, कोई भी बहन यह नहीं कहेगी कि हमको अगाध अनन्त रस नहीं चाहिए, हमको अमर जीवन नहीं चाहिए, हमको सामर्थ्य नहीं चाहिए। कोई ऐसा नहीं कहेगा। सबकी मांग एक है। पिता-पुत्र को लीजिए, सहोदर बन्धुओं को लीजिए, सहोदर बहनों को लीजिए, पति-पत्नी को लीजिए, प्राणीमात्र की मांग एक है। किन्तु रुचि एक नहीं है, योग्यता एक नहीं है, सामर्थ्य एक नहीं है, परिस्थिति एक नहीं है। तो रुचि का भेद है, योग्यता का भेद है, सामर्थ्य का भेद है, परिस्थिति का भेद है; किन्तु मांग एक है।

इसलिए मानव सेवा संघ यह मानता है कि दर्शन अनेक हैं, दृष्टिकोण अनेक हैं; पर जीवन एक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि हममें और दूसरों में चाहे कितने ही भेद हों; किन्तु भाई, जीवन की दृष्टि से एक हैं, लक्ष्य की दृष्टि से एक हैं। इसलिए सब अपने हैं। अपने के साथ कोई बुराई नहीं करेगा। बुराई के नाश का उपाय क्या है ? केवल एकमात्र यही उपाय है कि भाई, कोई बुरा न रहे, न बुराई करे। इस मूल सत्य को हम भूल जाते हैं और बुराई के बदले में बुराई करने लगते हैं। यह मानने लगते हैं कि बलपूर्वक बुराई मिट जाएगी, नाश हो जाएगी। पर ऐसा होता नहीं। होता क्या है ? आज आप बलपूर्वक किसी को दबा दीजिए। कालान्तर में वही निर्बल सबल हो जाएगा और आप निर्बल हो जाएंगे। आपको स्वयं वही दिन देखने पड़ेंगे, जो आपने बल के दुरुपयोग से दूसरों के साथ किया।

आज बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक विचार करना है कि आप अगर यह चाहते हैं कि कोई किसी के साथ बुराई न करे, तो उसका एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि भाई, कोई बुरा न रहे। अब कोई बुरा न रहे, इसके लिए प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहन को क्या करना है ? इस सम्बन्ध में आप विचार करें। तो सबसे पहली बात यह करना है कि हम स्वयं बुरे न रहें। यदि हम स्वयं बुरे न रहेंगे, तो हमारे द्वारा कोई बुराई नहीं होगी। जब हमारे द्वारा बुराई नहीं होगी, तब हमारा व्यक्ति-गत जीवन बुराई के प्रसार में नहीं रहेगा, अपितु भलाई स्वतः होने लगेगी।

अब इस बात पर विचार कीजिए कि हम बुरे कैसे न रहें ? तो इसका एक बड़ा सुगम उपाय है। वह उपाय यह है कि भूतकाल हमारा-आपका अथवा किसी का कितना ही सदोष रहा हो, बुरा रहा हो; किन्तु वर्तमान प्रत्येक भाई का, प्रत्येक बहन का निर्दोष है। क्यों ? अगर आज किसी भाई से, किसी बहन से पूछा जाए कि बताओ, अब तुम्हारे जीवन में क्या बुराई है ? तो वह कहेगी कि साहब, हमने पहले यह किया था, हमें क्रोध आगया, हम काम से पीड़ित हो गए, हमें लोभ ने सताया, हमें मोह ने सताया इत्यादि-इत्यादि। किन्तु यदि यह पूछा जाए कि बताने से पहले की यह बातें हैं या इस समय की ? तो प्रत्येक भाई-बहन को यह मानना पड़ेगा कि भाई, बताने से पहले की हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि हम सबका वर्तमान निर्दोष है।

जब हम सबका वर्तमान निर्दोष है, तो केवल इतनी-सी

जिम्मेदारी आ जाती है कि भूतकाल में जो बुराई कर चुके हैं, उसको नहीं करेंगे। यह है निर्णय। यह अभ्यास नहीं है, यह निर्णय है। यह निर्णय किस आधार पर है? निज-ज्ञान के आधार पर, जाने हुए के आधार पर, अपनी अनुभूति के आधार पर। हम और आप यह जानते हैं कि अगर कोई बुराई बनी है हमसे तो भूतकाल में बनी है, वर्तमान में कोई बुराई नहीं है। तो भूतकाल की बुराई को वर्तमान में आरोप करना, क्या अपने द्वारा अपने प्रति घोर अन्याय करना नहीं है? इससे बढ़ कर हम और कोई बुराई अपने साथ नहीं कर सकते।

इसलिए भाई, अपने जीवन का पहला प्रश्न यही है कि हम वर्तमान निर्दोषता को सुरक्षित रखेंगे। उसके सुरक्षित रखने के लिए एक बात बहुत आवश्यक है कि हम दूसरों को बुरा नहीं समझेंगे। जब तक हम दूसरों को बुरा समझते रहेंगे, तब तक हम अपने को भी बुरा समझते रहेंगे। आपने देखा होगा अपने जीवन में, मैंने भी अनुभव किया है कि जब कभी हम लोग आपस में बैठकर पर-चर्चा करते हैं, तब सिवाय इसके कि हम किसी को यह बताएं कि उसने यह भूल की, इसके सिवाय और क्या करते हैं? या भाई किसी से यह कहें कि उसने हमारे साथ यह भलाई की। तो कीहुई भलाई-बुराई को हम आपस में कहते-सुनते रहते हैं।

क्या आपके पास कोई सबूत है कि जिसको आपने बुराई करते देखा था, वह अब भी बुरा है? यदि अब वह बुरा नहीं है, तो क्या आपका यह निर्णय सत्य हो सकता है? क्या सर्वांश में मिथ्या नहीं है? मानना पड़ेगा कि मिथ्या है।

आप कहें कि हम कैसे मान लें कि वह अच्छा हो गया ? तो हम आपसे पूछते हैं कि आपने कैसे मान लिया कि वह अब तक बुरा ही है। अगर आप किसी को अच्छा नहीं मान सकते, तो आपको किसी को बुरा मानने का क्या हक है ? इसलिए हम क्यों इस झंझट में पड़ें कि हम पर-चर्चा करें ? हाँ, पर-सेवा करें।

यदि चर्चा करनी ही है, तो प्रिय चर्चा करें। जो अपना प्यारा है, उसकी जब हम चर्चा करेंगे, तो प्रीति की वृद्धि होगी। अपना प्रिय कौन हो सकता है भैया ? प्रभु। बड़ी सुन्दर बात बताई, प्रभु। वस्तु और व्यक्ति, इन दोनों को हम अपना प्रिय नहीं कह सकते भाई। वस्तु का तो सदुपयोग करना है और व्यक्ति की सेवा करना है। व्यक्तिकी सेवा और वस्तु का सदुपयोग कर सकते हैं। किन्तु इन दोनों को न अपना कह सकते हैं और न यह कह सकते हैं कि यह अपने प्रिय हैं। क्योंकि प्रिय उसे कह सकते हैं, जिससे जातीय एकता हो, स्वरूप की एकता हो, नित्य सम्बन्ध हो, उसी को प्रिय कह सकते हैं। आप अपने शरीर को अपना शरीर कहते हो, पर इससे आपकी जातीय एकता नहीं है। आप कहेंगे, कैसे ? तो सभी भाई-बहन जो यहाँ बैठे हैं, अपने ज्ञान के प्रकाश में इस बात का अभी-अभी अनुभव करें कि भाई, क्या हम वह नहीं हैं, जो पहले थे ? यहाँ बूढ़े भी होंगे, युवक भी होंगे, बालक भी होंगे।

हर भाई, हर बहन को यह भास होगा कि भाई, हम तो वही हैं, जो पहले थे। लेकिन क्या आपका शरीर वही है, क्या आपकी परिस्थिति वही है, क्या आपकी अवस्था वही है ? तो हर एक भाई को, हर एक बहन को मानना पड़ेगा कि भाई,

हमारा शरीर जैसा पहले था, वैसा अब नहीं है; हमारी परिस्थिति जैसी पहले थी, वैसी अब नहीं है। परिस्थिति बदल गई, शरीर बदल गया। किन्तु अनुभव यह है कि हम वही हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि भाई, शरीर बदल गया है, हम नहीं बदले हैं। तो बदलने वाले का और न बदलने बाले का जातीय सम्बन्ध नहीं हो सकता, केवल मानी हुई एकता हो सकती है, माना हुआ सम्बन्ध हो सकता है।

यह जो हम मानने लगे कि शरीर हमारा है, बस इतना ही शरीर से सम्बन्ध है। वास्तव में शरीर की और हमारी जातीय भिन्नता है। आप विचार करके देखें कि जब शरीर की और अपनी जातीय भिन्नता है, तो सम्बन्धियों की और अपनी जातीय एकता कैसे हो सकती है, वस्तुओं की और अपनी जातीय एकता कैसे हो सकती है ? जिससे जातीय एकता नहीं हो सकती, उसकी ममता, उसकी कामना, उसका तादात्म्य विनाश का मूल हो जाता है। जिससे जातीय भिन्नता है, यदि आप उसमें ममता करेंगे, तो क्या होगा ? आप लोभ-मोह में आबद्ध हो जाएँगे। यदि उसकी आप कामना करेंगे, तो अभाव में आबद्ध हो जाएँगे। यदि उससे तादात्म्य रखेंगे, तो जड़ता में आबद्ध हो जाएंगे।

किसी भी भाई या बहन, चाहे वह किसी भी वर्ग, देश, मजहब और इज्म का हो, उससे यह पूछा जाए, कि क्या तुम पराधीनता चाहते हो, क्या तुम जड़ता चाहते हो, क्या तुम अभाव चाहते हो ? तो कहेगा, नहीं चाहते, नहीं चाहते। तो भाई मेरे, आपकी जो स्वाभाविक मांग है, आपकी जो वास्तविक

आवश्यकता है, वह शरीर के द्वारा पूरी नहीं हो सकती। वह किसी परिस्थिति के द्वारा पूरी नहीं हो सकती, वह किसी अवस्था के द्वारा पूरी नहीं हो सकती। वह कैसे पूरी हो सकती है ? जब आप और हम मानव होने के नाते, एक इन्सान होने के नाते, इस बात पर विचार करें कि हम मानव क्यों हैं ?

केवल एक ही बात की दृष्टि से हम और आप मानव हैं कि मानव अपने जाने हुए असत् का त्याग कर सकता है, कोई अन्य पशु-पक्षी आदि नहीं कर सकता। केवल एकमात्र मानव ही इस कार्य में समर्थ है कि वह अपने जाने हुए असत् का त्याग कर सकता है। इसलिए भाई, यह जो विवेक-विरोधी सम्बन्ध आज हमारे जीवन में आगया है कि जिसे हम सोचते ही नहीं कभी ! बड़े-बड़े ईश्वरवादी – महाराज ! क्षमा करें, बिगड़ न जाएं—ठंडी तबियत से सोचें। बड़े-बड़े ईश्वरवादी जो अपने को कहते हैं कि हम बड़े समझदार हैं, बड़े सत्संगी हैं, वे क्या प्रश्न करेंगे कि हमारा मन भगवान् में क्यों नहीं लगता ?

मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या मन आपकी जाति का है, क्या मन जिस धातु से बना है, उसी धातु से आप बने हैं ? क्या आपकी जो जाति है वही मन की है ? तो आपको मानना पड़ेगा कि नहीं। बड़े-से-बड़े मनोविज्ञानी इस बात को सिद्ध नहीं कर सकते कि मन की, और वह जो यह कहता है कि मेरा मन, उसकी जातिय एकता है। यह बिल्कुल गलत कहता है, बिना सोचे-समझे कहता है, अपने जाने हुए का अनादर करके कहता है।

इसलिए भाई मेरे, प्रभु मेरे हैं। पर मन मेरा नहीं है, तन मेरा नहीं है, प्राण मेरे नहीं हैं, वस्तु मेरी नहीं है। हां, एक बात अवश्य है कि उस प्रभु ने जो वस्तु मुझे दी है, योग्यता दी है, सामर्थ्य दी है, वह इस ढंग से दी है कि ऐसा मालूम होता है कि मानो, मेरी ही है। प्रभु ने मुझ पर इतना विश्वास किया है, मुझे ऐसा समझा है कि मैं उसकी दी हुई वस्तु, सामर्थ्य, योग्यता का उपयोग उसके दिये हुए विवेकरूपी विधान के प्रकाश में ही करूंगा। प्रभु ने प्राणीमात्र की ईमानदारी पर इतना विश्वास किया है।

किन्तु आज अपने विश्वासी में कि जिसने हम पर इतना विश्वास किया, हम कितना विश्वास करते हैं ? जरा सोचो तो सही। आप बैंक के एकाउण्ट पर विश्वास करते हैं कि प्रभु पर विश्वास करते हैं ? आप ज्ञान, विज्ञान और कला पर विश्वास करते हैं कि प्रभु में विश्वास करते हैं ? विचार करें और बहुत गम्भीरता से विचार करें। कोई विरला ही आस्तिक ऐसा होगा, जो अपने को यह उत्तर दे सके कि मेरे जीवन में यदि विश्वास है तो केवल प्रभु का है, और किसी का विश्वास नहीं है। ऐसा उत्तर कोई विरला ही दे पाएगा। जो ऐसा उत्तर अपने को दे सकेगा, उसके जीवन में अगाध प्रियता स्वतः जागृत होगी, अखण्ड स्मृति स्वतः जागृत होगी, निष्कामता स्वतः आजाएगी, परम शान्ति स्वतः आजाएगी।

जिसकी प्रभु में आत्मीयता हो जाती है, उसकी किसी अन्य में ममता नहीं रहती, कामना नहीं रहती, उसका किसी से तादात्म्य नहीं रहता। आप विचार करके देखें कि ममता के

नाश होने पर किसी भी विकार की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। ममता के रहते हुए, माफ कीजिए भाई, चाहे कोई नमाज पढ़े, चाहे कोई सन्ध्या करे—इसका अर्थ आप यह न समझिए कि मैं नमाज और सन्ध्या का विरोधी हूँ, विरोधी नहीं हूँ—लेकिन एक निवेदन यह है कि आप ममता को बिना छोड़े चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारह पुराण पढ़ जाओ, कुरान बाइबिल सब चाट जाओ, गीता का रोज पाठ करो, गायत्री का रोज जप करो। यह निरर्थक तो नहीं जाएगा, कालान्तर में भले ही उसका फल हो। किन्तु वर्तमान में आपको विवश होकर यह मानना पड़ता है कि क्या बताएं महाराज ! विकार नाश नहीं होते, काम से हम पीड़ित हैं, क्रोध से हम पीड़ित हैं, लोभ से हम पीड़ित हैं, मोह से हम पीड़ित हैं। लेकिन बोले, हम ईश्वर वादी हैं, हम वैदिक धर्मी हैं, हम सनातन धर्मी हैं, हम इस्लाम को मानते हैं।

सोचो भाई, जरा विचार तो करो। विचार करो गम्भीरता से कि तुम्हारा प्रभु जब तुम्हारी दशा को देखता होगा, तो क्या सोचता होगा ? क्या वह समझता होगा कि आप उसे मानते हैं ? कदापि नहीं। इसलिए भाई मेरे, अब समय आगया है कि इस बात की जरूरत नहीं है कि साहब, आपका दृष्टिकोण क्या है, आपकी फिलोसोफी क्या है, आपका मजहब क्या है, आपका इज्म क्या है ? जो भी आपकी फिलोसोफी है, क्या उससे आपने अपने को सुन्दर बनाया या नहीं ? यह प्रत्येक भाई, प्रत्येक बहन का प्रश्न है और वर्तमान का प्रश्न है, आगे-पीछे का नहीं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी का मजहब गलत है,

किसी का इज्म गलत है। ऐसा मैं कहने का हकदार भी नहीं हूँ। तुम जानो, तुम्हारा मजहब जानें। लेकिन यह बात तो सामने कहने में आती है कि हमने अपने मजहब को अपने जीवन से सिद्ध नहीं किया, हमने अपनी मान्यता को अपने जीवन से सिद्ध नहीं किया। आप जानते हैं, जो चीज जीवन में नहीं आती, वह विभु नहीं होती, वह नित्य नहीं होती। जो चीज जीवन में आजाती है, वह विभु हो जाती है। क्यों ? इसमें एक वैज्ञानिक रहस्य है, विचार करें। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से जिसके द्वारा जो चीज विषय की जाती है, वह विषय होने वाली वस्तु विषय करने वाली वस्तु से सीमित होती है, उसकी सीमा में होती है। इससे क्या सिद्ध हुआ ? इन्द्रियों के द्वारा जिस सृष्टि को आप विषय करते हैं, वह सृष्टि इन्द्रियों के किसी एक अंश में है। अर्थात् इन्द्रियां अपने विषय सृष्टि से अधिक विभु हैं।

जिन इन्द्रियों को आप मन के द्वारा विषय करते हैं, वह मन इन्द्रियों से अधिक विभु है। जिस मन के संकल्प पर आप बुद्धि से निर्णय करते हैं, वह बुद्धि उस मन से अधिक विभु है। जो आप यह कहते हैं कि मेरी बुद्धि, तो आप बुद्धि से अधिक विभु हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ ? जो चीज आपमें आजाएगी, वह विभु हो जाएगी। अर्थात् जो चीज आपका जीवन हो जाएगी, वह विभु हो जाएगी। वह व्यापक हो जाएगी, वह अविनाशी हो जाएगी, वह नित्य हो जाएगी।

आज दशा क्या है ? ईश्वर हमारे कथन में है, चिन्तन में भी है; किन्तु जीवन में नहीं है। धर्म आज हमारे कथन में है, चिन्तन में है; पर जीवन में नहीं है। इसका परिणाम है कि

वह विभु नहीं है। इसलिए यह एक मौलिक समस्या है, जिसे आपको ही हल करना है। वह तभी हल होगी, जबकि आपका जीवन और आपका दर्शन एक हो, आपका जीवन और आपकी आस्था एक हो, आपका जीवन और आपका निर्णय एक हो। तब आप और हम सुन्दर हो सकते हैं और अपने सुन्दर होने से ही सुन्दर समाज का निर्माण होता है।

सुन्दर समाज का निर्माण किसी स्कीम से नहीं होता, किसी पद्धति से नहीं होता। सुन्दर समाज का निर्माण होता है सुन्दर जीवन से। सुन्दर जीवन कब होता है ? जब हम अपनी दृष्टि से अपने को देखना आरम्भ करें तब। आप सोचिए, सत्संग क्या है ? सत्संग का असली अर्थ यह है कि जब आप अपनी दृष्टि से अपने जीवन का निरीक्षण करते हैं और उस निरीक्षण से जब आप अपने में किसी प्रकार का असत् पाते हैं, तब उस असत् के त्याग का अर्थ सत्संग है। असाधन क्या है, अकर्त्तव्य क्या है और आसक्ति क्या है ? यह और कुछ नहीं है, अपने जीवन में जो असत् है, उसका जब हम संग करते हैं, तब असत् के संग का जो परिणाम होता है, उसी का नाम अकर्त्तव्य है, उसी का नाम असाधन है और उसी का नाम आसक्ति है।

आज हमारी दशा क्या है ? असत् का संग रखते हुए सत् की चर्चा करते हैं, सत् का चिन्तन करते हैं और बलपूर्वक सत् को प्राप्त करना चाहते हैं असत् का संग करते हुए। परिणाम क्या होता है ? भगवत्-चिन्तन करते हैं और विषय चिन्तन होता है; आत्मा का चिन्तन करते हैं और देह का चिन्तन होता है और धर्म का चिन्तन करते हैं, अधर्म होता है । इसलिए भाई,

किसी भी विधियात्मक साधन करने से पूर्व इस बात पर विचार करलो कि हमारे जीवन में हमारा जाना हुआ असाधन क्या है। इस बात को मत देखो कि आपके जीवन में साधन क्या है। इसके देखने से कोई लाभ नहीं होगा। किन्तु इस बात को देखो कि हमारे जीवन में असाधन क्या है।

अपने असाधन के देखने से आपके जीवन में एक व्यथा जागृत होगी और उस व्यथा से एक चेतना आएगी। उस चेतना से आप असाधन के कारण को जान सकेंगे। जिस समय आप असाधन के कारण को जान लेंगे, तो कारण और कार्य दोनों का ही नाश हो जाएगा। असाधन के कारण के ज्ञान में ही उसका नाश निहित है। यह बड़ा भारी सत्य है कि असत् का ज्ञान असत् की निवृत्ति में हेतु होता है। जिस समय हमें असत् का ज्ञान होगा, उसी समय असत् की निवृत्ति होगी और असत् की निवृत्ति में ही सत् की प्राप्ति है, सत् की अभिव्यक्ति है, सत् से अभिन्नता है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि एकमात्र अपने में जो असत् है, उसी को जानना है। किन्तु आज हम ईश्वर को जानने की कोशिश करते हैं, आत्मा को जानने की कोशिश करते हैं। ऐसी बातों को जानने की कोशिश करते हैं, जिनको अभी नहीं जान सकते। कभी नहीं जान सकते ऐसा नहीं है। अभी क्यों नहीं जान सकते ? भैया, जिस असत् को जानते हो, उसको तो छोड़ते नहीं। यानी असत् को जानने का तो आप प्रयास नहीं करते और सत् को जानना चाहते, हो, नहीं जान सकते। तो होता क्या है ? असत् को न छोड़ने

से असत् के साथ-साथ सत् को भी मानते रहते हैं। यह भी मानते हैं कि परमात्मा है और यह भी अच्छी तरह से अनुभव करते हैं कि जीवन में आसक्ति है, मोह है, राग है, द्वेष है, काम है, क्रोध है जीवन में, साथ ही यह भी मानते रहते हैं कि परमात्मा है। मैं आपसे पूछता हूँ कि यह कोई परमात्मा का मानना हो गया ? क्या राय है ? नहीं हो गया।

इसलिए भाई, आज हमें और आपको निराश नहीं होना है, हार नहीं मानना है, अधीर नहीं होना है। किन्तु सजग होना है, सावधान होना है और अपने ही द्वारा अपने जीवन का ठीक-ठीक अध्ययन करना है। जिस समय हम और आप अपने जीवन का ठीक-ठीक अध्ययन करने लगेंगे, आप सच मानिए, अनायास हर एक भाई को, हर एक बहन को अपने असत् का दर्शन हो जाएगा। जो उसके जीवन में असत् है, उसका दर्शन हो जाएगा। असत् की दशा ऐसी होती है कि जैसे कोई आदमी प्रकाश के द्वारा अन्धकार को विषय करना चाहे, तो नहीं कर सकता। उसी प्रकार जिस समय आप असत् को जानने का प्रयास करेंगे, तो असत् का ज्ञान होगा, किससे ? जो सत् है उससे।

यह बहुत गम्भीर बात है, बड़े रहस्य की बात है कि असत् का ज्ञान सत से होता है। जिस समय आप यह सोचेंगे कि हम असत् को देखें, कहाँ है हमारे जीवन में, तो उसी समय सत् से एकता हो जाएगी। असत् को देखने चलेंगे, तो ऐसी दशा होगी महाराज ! कि जैसे सूर्य कहे कि अन्धकार को देखें, कैसा है ? सूर्य कभी अन्धकार को देख नहीं सकता।

इससे क्या सिद्ध हुआ ? असत् को जानने की उत्कट जिज्ञासा-मात्र से असत् आपको मुँह नहीं दिखाएगा, आपके जीवन में नहीं रहेगा। जब असत् आपके जीवन में नहीं रहेगा, तो जो सत् नित्य प्राप्त है, उसमें आपकी अगाध प्रियता होगी। इसी का नाम भक्ति है। अगाध प्रियता का नाम ही भक्ति है। असत् जीवन में न रहे, इसी का नाम मुक्ति है। मुक्ति और कुछ नहीं।

जीवन में–से असत् निकल गया, बन्धन निकल गया, तो सत् में अगाध प्रियता हो गई। यह अपने आप हो जाती है। क्यों ? असत् की ममता में जो शक्ति व्यय होती थी, असत् के नाश होते ही वही शक्ति सत् की प्रियता में परिवर्तित हो जाती है। अर्थात् समस्त आसक्तियां अगाध प्रियता में बदल जाती हैं। इस दृष्टि से हम सबको अगाध प्रियता प्राप्त हो सकती है। यह सभी का अनुभव है कि प्रियता में रस से भिन्न कुछ नहीं है। प्रियता में एकमात्र रस ही रस है। रस किसे कहते हैं भैया ? जिससे कभी तृप्ति न हो, जिससे कभी अरुचि न हो और जिसकी कभी पूर्ति न हो।

अगर तृप्ति हो गई तो रस कैसा, अगर पूर्ति हो गई तो रस कैसा और अरुचि हो गई तो रस कैसा ? अब कल्पना करो कि किसी को ऐसा रस मिल जाए कि जिससे न तृप्ति होती है, न अरुचि होती है, न पूर्ति होती है और न उसकी निवृत्ति होती है। उस रस का कोई वारापार लगा सकता है क्या, उसकी सीमा कर सकता है क्या, नाम-तौल कर सकता है क्या ? कदापि नहीं। इसलिए भाई, यह मानव जीवन उसी रस की

प्राप्ति के लिए मिला है। उस रस की प्राप्ति प्रत्येक भाई को हो सकती है। उसके लिए किसी वस्तु विशेष की अपेक्षा नहीं है, किसी परिस्थिति विशेष की अपेक्षा नहीं है। किस बात की अपेक्षा है भाई ? उसकी आवश्यकता अनुभव करें, उसकी जरूरत महसूस करें, तो वह रस मिल सकता है। इससे ज्यादा सहज, इससे ज्यादा सुगम और इससे ज्यादा आसान क्या होगा कि जिसकी जरूरत महसूस करने से ही प्राप्ति होती है ?

संसार में यह देखने में आता है कि एक आदमी किसी बात की कामना करता है, उसके लिए प्रयत्न करता है, फिर भी कामना पूरी हो, न हो, दोनों ही बातें सामने आती हैं। किन्तु अगाध अनन्त रस के सम्बन्ध में अनन्त का ऐसा मंगलमय विधान है कि जहां आपने उस अनन्त रस की आवश्यकता अनुभव की, कि आपको वह रस अवश्य प्राप्त हो जाएगा।

आवश्यकता का स्वभाव क्या है ? आवश्यकता अनेक कामनाओं को स्वतः खा लेती है, यह आवश्यकता का स्वभाव है। जब आप किसी एक जरूरत को महसूस करते हैं, तब और ख्वाहिशात नहीं रहती, यह नियम है। इसलिए भाई, उस अनन्त रस की हम आवश्यकता अनुभव करें। जब हम उसकी आवश्यकता अनुभव करेंगे, तब सभी कामनाएं स्वतः नाश हो जाएंगीं। कामनाओं के नाश में ही परम शान्ति है। इसलिए निष्कामता से उदित परम शान्ति, असंगता से प्राप्त स्वाधीनता और आत्मीयता से जागृत अगाध प्रियता ही मानवता है। यह मानवता हर एक भाई में, हर एक बहन में मौजूद है। उसको विकसित करना, उसकी खोज करना है। उसको कहीं बाहर

से लाना नहीं है। वह आप में मौजूद है और उसको विकसित करने का एकमात्र उपाय है, सत्संग।

सत्संग कई प्रकार से होता है। आज मैं केवल एक प्रकार का निवेदन करूंगा। वह सत्संग होता है, शान्त होने से। मानव सेवा संघ की भाषा में उसका नाम 'मूक सत्संग' है। शान्त होने का अर्थ क्या है? इस पर सोचिए। शान्त होने का अर्थ यह नहीं है कि हमने यह संकल्प कर लिया कि हम नहीं बोलेंगे, ऐसा नहीं। बोलने की रुचि नहीं है, देखने की रुचि नहीं है, सुनने की रुचि नहीं है, सोचने की रुचि नहीं है। बोले, क्यों? भाई, जैसा बोलना चाहिए था बोल लिया, जैसा देखना चाहिए था देख लिया, जितना सोचना चाहिए था सोच लिया।

सही कार्य करने से करने की रुचि का नाश होता है। जब करने की रुचि का नाश होता है, तब अपने आप शान्ति की अभिव्यक्ति होती है, शान्ति का प्रादुर्भाव होता है। जब शान्ति का प्रादुर्भाव होता है, तब नित्य प्राप्त सत् की प्राप्ति होती है। सत् किसको कहते हैं भाई? जो पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। जो 'है', उसको सत् कहते हैं। आप जानते हैं, जो 'है', उससे देश की दूरी नहीं होती, काल की दूरी नहीं होती। जिससे देश-काल की दूरी नहीं होती, उसकी प्राप्ति के लिए श्रम अपेक्षित नहीं होता। आप सच मानिए। श्रम की आवश्यकता किसकी प्राप्ति के लिए होती है? जिससे देश और काल की दूरी हो। सत् से देश और काल की दूरी नहीं है। इसलिए श्रमरहित होते ही सत् का संग होता है।

जब सत् का संग होता है, तब सबसे पहले दुख की निवृत्ति या दुख का नाश हो जाता है, दुख नहीं रहता। किन्तु दुख न रहने मात्र में ही आप कहीं सन्तुष्ट मत हो जाना। अर्थात् शान्ति को सुरक्षित रहने देना, उसमें रमण मत करना। जब आप शान्ति में रमण नहीं करेंगे, तब अपने आप उस शान्ति से असंगता हो जाएगी, अपने आप होगी। जिस समय शान्ति से असंगता हो जाती है, उसी समय देह का अभिमान गल जाता है। आप चाहो तो गल जाए, न चाहो तो गल जाए। शान्ति से असंग हुए, कि देह का अभिमान गला।

देह का अभिमान गलते ही अपने आप बिना चाहे, निर्वासना आजाती है। निर्वासना आते ही पराधीनता स्वाधीनता में, जड़ता चेतना में विलीन होजाती है। जब जड़ता चेतना में विलीन हो जाती है, तब अपने आप जो 'है', उसमें प्रियता जागृत होती है। उसे भले ही भौतिकवादियों ने विश्व-प्रेम कहा हो, उसे भले ही अध्यात्मवादियों ने आत्मरति कहा हो और भले ही ईश्वरवादियों ने प्रभु-प्रेम कहा हो। किन्तु वह प्रेम जागृत हो जाता है, जिसके जागृत होते ही जीवन में किसी भी प्रकार का अभाव नहीं रहता, नीरसता नहीं रहती। अर्थात् पूर्णता और नित-नव रस की अभिव्यक्ति होती है, जो वास्तव में जीवन है। इस दृष्टि से हम और आप सभी शान्त हो कर सत् का संग कर जीवन की पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं।

अब आप कहेंगे कि उस शान्ति के लिए हम कौनसा समय निश्चित करें ? तो सोने से पहले, जगने के बाद, प्रत्येक

कार्य के आरम्भ में और प्रत्येक कार्य के अन्त में शान्ति का सम्पादन करें। उसके करने के लिए हम करने वाली प्रवृत्तियों पर सजगता से दृष्टि रखें कि हमसे कोई ऐसी बात न हो जाए कि जो हमें नहीं करनी चाहिए। बस, इसी से आपको सत्संग की प्राप्ति होगी। सत्संग की प्राप्ति होते ही जीवन कृतकृत्य हो जाएगा, यह निर्विवाद सत्य है ॥ॐ॥



३५

(अ)

प्रवचन :

साधन के जो प्रधान अंग है, वे तीन हैं—विश्वास, विचार और कर्त्तव्य। कर्त्तव्य का सम्बन्ध प्राप्त परिस्थिति से हैं, विश्वास का सम्बन्ध प्रभु-विश्वास से है और विचार का, सम्बन्ध देह-अभिमान के नाश से है। जो परिस्थिति हमें प्राप्त है, वह कर्त्तव्यपरायणता के द्वारा राग-निवृत्ति के लिए है। कोई भी परिस्थिति जीवन नहीं है। इस दृष्टि से जब जैसी परिस्थिति हो, तब यह बात सदैव सामने रखना चाहिए कि भाई, राग-निवृत्ति के लिए मंगलमय विधान से यह परिस्थिति मिली है। ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है, जो किसी और कार्य के लिए मिली हो। परिस्थिति का उद्देश्य ही राग निवृत्ति है। इस दृष्टि से समस्त परिस्थितियाँ समान अर्थ रखती हैं। इस रहस्य को जान लेने पर परिस्थिति-भेद होने पर भी सफलता में कोई बाधा नहीं होती, सिद्धि में कोई बाधा नहीं होती। किन्तु यह बात वे ही साधक समझ पाते हैं, जो अपने जीवन के उद्देश्य पर विशेष ध्यान देते हैं।

विचार का स्थान साधन में एकमात्र देह-अभिमान गलाने में है। यह देह का जो अभिमान हो गया है कि मैं देह हूँ या देह मेरी है, यह अभिमान विचार से नाश होता है। देह अभिमान नाश होने पर चिन्मय जीवन से अभिन्नता होती है। उस जीवन में जड़ता की गन्ध भी नहीं है, अभाव नहीं है। वह जीवन अनित्य नहीं है। इससे तो ऐसा मालूम होता है कि विचार में कितनी ही समस्याओं का हल है।

अब विश्वास की बात कोई कहे कि विश्वास किस लिए है? तो सुने हुए प्रभु में आस्था करने के लिए और उनसे सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही विश्वास है। साधक से भूल क्या होती है कि जो बात जिसके लिए है, उसका उपयोग उसमें न करके अपने मनमाने ढंग से उसका उपयोग कर बैठता है। जैसे कोई कहे कि भाई, हमें जो परिस्थिति प्राप्त है, वह राग निवृत्ति के लिए नहीं है, सुख-दुख भोगने के लिए है। यदि कोई ऐसा सोचेगा, तो विधान से मिली हुई परिस्थिति का दुरुपयोग हो जाएगा। उससे साधक का कोई लाभ नहीं होगा, बल्कि बड़ी क्षति होगी।

जो भी परिस्थिति हमें प्राप्त है, उसका अर्थ है कि इससे हम राग रहित हो जाएँ। जिस संकल्प की पूर्ति राग के मिटाने में हेतु है, उसकी पूर्ति हो जाएगी और जिस संकल्प की अपूर्ति राग के मिटाने में हेतु है, उसकी पूर्ति होगी नहीं। इसी का नाम परिस्थिति है। संकल्प की पूर्ति और अपूर्ति का ही तो दूसरा नाम परिस्थिति है। कोई परिस्थिति आपके लिए ऐसी आती है कि जो आपके उत्पन्न हुए संकल्पों को पूरा कर देती है और

कोई ऐसी परिस्थिति आती है कि उत्पन्न हुए संकल्प पूरे नहीं होते। जो संकल्प पूरे होते हैं, वे भी इसीलिए कि हम राग रहित हो जाएँ और जो संकल्प पूरे नहीं होते, वे भी इसलिए कि हम राग रहित हो जाएँ। तो परिस्थिति का उपयोग राग रहित होने में है।

अब यह बात उत्पन्न होती है कि जब सभी परिस्थितियों का उपयोग राग रहित होने में ही है, तो वास्तविक जीवन किसी भी परिस्थिति में आबद्ध नहीं हो सकता। जब साधक दृढ़ता के साथ यह बात स्वीकार कर लेता है कि हमारा जो वास्तविक जीवन है, वह किसी परिस्थिति विशेष में आबद्ध नहीं है, तब उसके जीवन में बड़ी ही सजगता आती है, बड़ी ही जागृति आती है। एक ऐसी बात आ जाती है कि मानो, समस्त संसार समान है। विषमता नाश हो जाती है। विषमता के नाश होने से जितने द्वन्द्व होते हैं जीवन में, वे सब नष्ट हो जाते हैं। पर इस बात पर हम लोग कम ध्यान देते हैं। सोचने लगते हैं कि हाय! हाय!! ऐसा क्यों हो गया अथवा बड़ा अच्छा हुआ कि ऐसा हो गया! यानी होने में सन्तुष्ट नहीं रह पाते, प्रसन्न नहीं रह पाते। या तो क्षोभित हो जाते हैं या मोहित हो जाते हैं।

क्षोभित होना या मोहित होना, यह तो कोई साधन नहीं है भाई। यह तो असाधन है। यह जीवन नहीं है। क्षोभित हो गए, तो क्रोधित हो जाएंगे। क्रोधित हो जाएँगे, तो विस्मृति आ जाएगी। मोहित हो गए, तो आसक्त हो जाएँगे, आसक्त हो जाएंगे, तो पराधीनता, जड़ता, वह सब दोष आ जाएँगे। इसलिए

यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि साधक के जीवन में न क्षोभित होने की आवश्यकता है और न मोहित होने की आवश्यकता है। तो होते क्यों हैं ? केवल इसलिए कि हम इस बात को भूल जाते हैं कि प्रत्येक परिस्थिति मंगलमय विधान से निर्मित है।

यदि दुख है तो वह भी हित के लिए है और सुख है तो वह भी हित के लिए है। लेकिन दुख के आते ही लोग एकदम घबड़ा जाते हैं और सोचने लगते हैं कि जितनी जल्दी हो यह दुख हमारे जीवन में-से चला जाए, नष्ट हो जाए। पर ऐसा होता नहीं। जब तक प्राणी दुख का पूरा प्रभाव अपने पर नहीं होने देता, तब तक उसके जीवन में दुख आता ही रहता है। आप कहेंगे कि दुख के पूरे प्रभाव का अर्थ क्या है ? दुख के पूरे प्रभाव का अर्थ है कि जब जीवन में दुख का पूरा प्रभाव हो जाता है, तब भोग की रुचि, भोग की वासना मिट जाती है। भोग की वासना मिट जाने के बाद राग की उत्पत्ति ही नहीं होती अर्थात् जीवन राग रहित हो जाता है, जिसके होते ही स्वतः बिना किसी श्रम के योग प्राप्त होता है।

आपने सुना होगा कि साधन में श्रम अपेक्षित नहीं है। इस दृष्टि से राग रहित होने पर स्वतः योग होता है। आज हमसे भूल क्या होती है कि योग का सम्पादन नहीं होने देते। योग के फल में आस्था कर लेते हैं कि योग हो गया तो राग नाश हो गया कि नहीं, योग हो गया तो सिद्धि आ गई कि नहीं, योग हो गया तो योग का जो फल है स्वरूप की अवस्था वह हुई कि नहीं—ऐसी बातें अपने सामने रख लेते हैं। इससे

बड़ी हानि यह होती है कि साधन की फलासक्ति नाश नहीं होती। फलासक्ति के नाश न होने से निष्कामता सुरक्षित नहीं रहती। निष्कामता के सुरक्षित न रहने से पुनः राग की उत्पत्ति हो जाती है।

इसलिए किस साधन से क्या फल होगा, इस पर पहले से कभी आस्था नहीं रखनी चाहिए। असाधन न रहे जीवन में, इससे बड़ी सिद्धि क्या होगी भाई? भोग की रुचि का नाश हो गया, भोग की वासना का नाश हो गया, यही बड़ी भारी परम सिद्धि है। राग रहित होने से जो योग प्राप्त होगा, उससे क्या मिलेगा, जो बोध होगा, उससे क्या मिलेगा, जो प्रेम की अभिव्यक्ति होगी उससे क्या मिलेगा— इन सब बातों पर दृष्टि रखने से साधन में विघ्न ही होता है।

प्रत्येक परिस्थिति राग निवृत्ति के लिए मंगलमय विधान से मिली है। अतः अपनी-अपनी परिस्थिति का आदरपूर्वक स्वागत करना चाहिए। किन्तु कितने साधक ऐसे हैं, जो अप्राप्त परिस्थिति का आह्वान नहीं करते? कोई कहता है कि एकान्त मिल जाता, तो कुटिया बना कर रहते। छोटी-छोटी बातों को लेकर लोग सोचते रहते हैं। दिन-रात किसी-न-किसी अप्राप्त परिस्थिति का आह्वान और प्राप्त परिस्थिति का दुरुपयोग करते रहते हैं अथवा उसमें जीवन-बुद्धि रखते हैं। यह तीन दोष आ जाते हैं। इन दोषों से बचने का उपाय एकमात्र यह है कि प्रत्येक परिस्थिति अनन्त के मंगलमय विधान से निर्मित है और राग निवृत्ति के लिए मिली है, ऐसा मानें। परिस्थिति जीवन नहीं है।

यदि किसी को कोई वस्तु विशेष मिल गई तो जीवन मिल गया हो, ऐसी बात नहीं है। यदि किसी को पद विशेष मिल गया तो उससे जीवन मिल गया हो, ऐसी बात नहीं है। यदि किसी को कोई व्यक्ति विशेष मिल गया तो उससे जीवन मिल गया हो, ऐसी बात भी नहीं है। अब आप बिचार करें कि कितने लोग ऐसे होंगे, जो वस्तु के मिलने से, व्यक्ति के मिलने से या पद आदि के मिलने से अपना जीवन नहीं मानते ? कम लोग होंगे। वे वही लोग होंगे कि जिन्होंने जीवन के उद्देश्य को जान लिया है, अथवा निर्णय कर लिया है कि हमारा उद्देश्य क्या है।

आज जो सिद्धि में कठिनाई होती है, साधन में जो अस्वाभाविकता मालूम होती है, उसका कारण क्या है ? उसका एकमात्र कारण यही है कि हम यह नहीं जानते कि हमारा साध्य क्या है ? जैसे कोई पथिक चला जा रहा है बड़ी तेजी से। उससे पूछो, कहाँ जा रहे हो ? बोले, पता नहीं। क्यों जा रहे हो ? बोले, पता नहीं। ऐसे पथिक को आप क्या कहेंगे ? कहेंगे कि मालूम होता है, इसके मस्तिष्क में विकृति है। चला जा रहा है और कहता है कि हमको नहीं मालूम कि कहाँ जा रहे हैं।

इसलिए भाई, अपने साध्य पर विचार करो। कोई कहता है कि शादी करनी चाहिए कि नहीं करनी चाहिए। इससे यह सिद्ध हो गया कि न तो शादी करना जीवन है और न शादी न करना जीवन है। क्योंकि अगर शादी न करना जीवन होता, तब तो यह बात सामने आजाती

कि शादी नहीं करना चाहिए। यदि शादी करना जीवन होता, तो यह बात सामने आ जाती कि शादी करना चाहिए। किन्तु जब यह द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है, तो इस द्वन्द्वात्मक स्थिति से यह सिद्ध हो जाता है कि शादी करना भी साधन है और शादी न करना भी साधन है। पर साध्य नहीं है। ऐसे ही कोई कहे कि अमुक कार्य करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए। तो समझना चाहिए कि करना भी साध्य नहीं है और न करना भी साध्य नहीं है। किन्तु न करना भी साधन हो सकता है, और करना भी साधन हो सकता है। तो भाई, जो कुछ करने और न करने के रूप में सामने आता है, वह सब साधन है, साध्य नहीं है। सही करने का फल साध्य है।

सही काम करने से क्या मिलता है और कुछ न करने से क्या मिलता है? सही करने से अथवा कुछ न करने से जो मिलता है, उसका नाम है, साध्य। सही करना अथवा कुछ न करना, यह है, साधन। किन्तु आज जो सही करने में अथवा कुछ न करने में या थोड़ा विश्राम पाने में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे बहुत काल तक साध्य को नहीं जान पाते। इसलिए भाई, जहाँ करने की बात आए, उसे भी साधन मानलो और जहाँ न करने की बात आए, उसे भी साधन मानलो। सही करना भी साध्य नहीं है और कुछ न करना भी साध्य नहीं है। साध्य है, इन दोनों का परिणाम। तो सही करने का परिणाम क्या होता है? सही करने का परिणाम होता है, करने के राग की निवृत्ति और सुन्दर समाज का निर्माण भौतिक दृष्टि से। अच्छा, करने के राग की निवृत्ति से क्या मिलता है? करने के राग की निवृत्ति से चिर-शान्ति और दुख-निवृत्ति मिलती

है। कोई कहेगा कि दुख निवृत्ति हमारा साध्य है, कोई कहेगा कि चिर शान्ति हमारा साध्य है।

भाई, सुन्दर समाज के निर्माण से क्या मिलता है? सुन्दर समाज के निर्माण से एकता मिलती है, स्नेह मिलता है, समता मिलती है, निर्भयता मिलती है। यह सब सुन्दर समाज के निर्माण के अंग हैं। जहाँ सुन्दर समाज बन जाता है, वहाँ स्नेह, एकता, समता, निर्वैरता, यह सब गुण अपने आप आ जाते हैं। किसी व्यक्ति विशेष में आते हों, सो नहीं; सारे समाज में आ जाते हैं यह सब गुण। क्यों आ जाते हैं? सुन्दर समाज सही काम करने से हुआ। सही काम करने से दो व्यक्तियों में, दो वर्गों में, दो देशों में एकता होगी, प्रेम होगा। जहाँ एकता और प्रेम है, वहाँ भय भी नहीं है, विषमता भी नहीं है, नीरसता भी नहीं है। जब नीरसता नहीं है, तो विकार की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। जब भिन्नता नहीं है, तो विकार उत्पन्न हो ही नहीं सकता। जब भय नहीं है, तब भी विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसलिए सही काम करने का अर्थ है, सुन्दर समाज का निर्माण। यह तो बाह्य लाभ हुआ। उसी सही काम को किसी ने अपने प्रेमास्पद की पूजा मान ली। तो सही काम करने वाले में अपने प्रेमास्पद की मधुर स्मृति जागृत होगी। यह हुआ आन्तरिक लाभ। तो सही कार्य करने से कर्त्ता अपने प्रेमास्पद की स्मृति हो जाता है। यह आन्तरिक लाभ हुआ सही काम करने से।

कुछ न करने से क्या होता है भाई ? कुछ न करने से कर्तापन का नाश होता है, कर्तृत्व नहीं रहता। जब कर्तृत्व नहीं रहता, तब किसी प्रकार के भोग की उत्पत्ति नहीं होती। जो कर्ता नहीं होता, वह भोक्ता भी नहीं होता। भोग का अभाव हो जाता है। भोग के अभाव में चिर शान्ति, दुख निवृत्ति, स्वाधीनता आदि जितने भी दिव्य गुण हैं, वे सब आजाते हैं। अर्थात् कुछ न करने से जीवन अपने लिए उपयोगी हो जाता है और सही करने से जीवन जगत के लिए उपयोगी हो जाता है। अपने लिए उपयोगी होने का अर्थ क्या है ? हमको स्वाधीनता प्राप्त हो जाए। तो भाई, कुछ न करने से भी सिद्धि मिलती है और सही करने से भी सिद्धि मिलती है।

यदि सही करने में जीवन-बुद्धि हो जाए अथवा कुछ न करने में जीवन-बुद्धि हो जाए, तो लोग कहने लगेंगे कि अगर कुछ न करने में जीवन है, तो यह जीवन उस पत्थर के टुकड़े को प्राप्त है, जो कुछ नहीं करता। जैसे लोग कहते हैं कि हमारा मन स्थिर हो जाए। तो क्या हिमालय से ज्यादा स्थिर हो जाएगा तुम्हारा मन ? क्या आकाश से ज्यादा विभु हो जाएगा तुम्हारा मन ? आप विचार करें और गम्भीरता से विचार करें। तो कुछ न करने का नाम जीवन नहीं है। कुछ न करने का जो फल है, वह जीवन है। ऐसे ही सही करने का नाम जीवन नहीं है। सही करने का जो फल है, वह जीवन है।

अब आप विचार कीजिए कि वह परिस्थिति जो होगी,

वह किस प्रकार की होगी ? वह कुछ करने की प्रेरणा देगी और कुछ न करने की प्रेरणा देगी। उदाहरण के लिए, आंख खराब हो गई, तो अब देख नहीं सकते। जब देख ही नहीं सकते, तो देखने की वासना का नाश कर दें। इसी प्रकार धन नहीं है, तो भाई, दान भी नहीं कर सकते और भोग भी नहीं कर सकते। तो भाई, देने की वासना भी छोड़ दें और लेने की वासना भी छोड़ दें। क्यों ? जब अपने पास सामर्थ्य नहीं है, तो बिना सामर्थ्य के कुछ नहीं मिल सकता। इसलिए हमें कुछ नहीं चाहिए। वह अचाहपद हो गया और न देना भी हो गया। लेना भी कुछ नहीं और देना भी कुछ नहीं; लेना-देना खत्म। लेने के राग का भी नाश और देने के राग का भी नाश।

तात्पर्य यह है कि यदि हमारे जीवन में-से राग का नाश नहीं हो रहा है, तो समझना चाहिए कि प्राप्त परिस्थिति का दुरुपयोग कर रहे हैं, सदुपयोग नहीं कर रहे। आप विचार करें। हमने बचपन में सुना था कि जो सुख चक्रवर्ती को नहीं मिलता, देवराज को नहीं मिलता, वह सुख वीतराग पुरुष को मिलता है। क्या यह कल्पनामात्र है, मजाक है ? देवराज और चक्रवर्ती होना भले ही कठिन हो। परन्तु वीतराग होना सभी के लिए सम्भव है। चक्रवर्ती और देवराज को मिलने वाला सुख रागयुक्त अनित्य है, जबकि वीतराग को मिलने वाला सुख नित्य है। आज लोग रागयुक्त सुख को पसन्द करते हैं। इसी-लिए परिस्थिति में जीवन-बुद्धि बन गई है। जब परिस्थिति में जीवन-बुद्धि हो जाती है, तब दीनता और अभिमान की

उत्पत्ति अवश्य होती है। जब दीनता और अभिमान की उत्पत्ति होगी, तो फिर देखिए, कौनसा दोष ऐसा है, जो जीवन में न आजाए ?

इसलिए प्रत्येक परिस्थिति मंगलमय है, राग निवृत्ति में हेतु है, सहायक है। जिस विधान ने परिस्थिति प्रदान की है, वह विधान हमारे लिए हितकर हैं, अहितकर नहीं है। इसलिए भाई, प्रत्येक परिस्थिति का स्वागत करते हुए वर्तमान कर्त्तव्य कर्म द्वारा चाहे तो अपने प्रभु की पूजा करो और चाहे सुन्दर समाज का निर्माण करो। बहुत-से लोग सोचते हैं कि सुन्दर समाज का निर्माण सही काम करने से कैसे होगा ? यदि सही काम करने से सुन्दर समाज का निर्माण नहीं होगा, तो और किसी प्रकार से हो नहीं सकता। आप कहेंगे कि दण्ड विधान से बल के दुरुपयोग को रोकेंगे। तो इसके लिए राष्ट्र की कल्पना की गई। परन्तु क्या आज राष्ट्र सुन्दर समाज का निर्माण कर सका ? अगर व्यक्ति अपने सुधार में पराधीन होता, तब तो यह बात ठीक मान ली जाती। अपने सुधार के लिए पराधीनता का अनुभव कभी नहीं होता, अपने सुधार में सभी स्वाधीन हैं।

इसलिए भाई, सही काम किये बिना सुन्दर समाज का निर्माण होता ही नहीं। कुछ न करना भी साधन है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति का शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। वह गंगा-स्नान नहीं कर सकता, तो उसके लिए गंगा स्नान न करना साधन है। ऐसे ही जो व्यक्ति गंगा स्नान कर सकता है, उसके लिए गंगा स्नान करना साधन है। तो स्नान न करना

भी साधन है और स्नान करना भी साधन है। इस प्रकार दोनों की प्रसन्नता सुरक्षित रहेगी कि नहीं ? उच्च कोटि के दार्शनिक दृष्टिकोण से तो कुछ न करने में ही सब कुछ करना है। और सही करने का फल ही कुछ न करना है।

जब विचार करके देखिए कि सही करने की शक्ति कुछ न करने में-से ही आती है। जब हमें यह बात मालूम हो जाती है कि सही करने भी साधन है और कुछ न करने में भी साधन है। तो फिर निर्बल-से-निर्बल भी उसी प्रकार सिद्धि पा सकता है, जिस प्रकार सबल-से-सबल सिद्धि पाता है। आज हम इस बात पर ध्यान नहीं देते और यह सोचने लगते हैं कि अगर हम कुछ नहीं कर सकते, तो हमारा साधन ही नहीं बनेगा। फिर वस्तु और व्यक्ति के आश्रित हो कर विकारयुक्त जीवन बना लेते हैं। इस प्रकार जीवन का बहुत बड़ा भाग धोखे-धड़ाके में निकल जाता है।

इसलिए भाई, इन तीन बातों पर खूब विचार करना चाहिए—एक तो यह कि परिस्थिति राग निवृत्ति का साधन है, जीवन नहीं है। दूसरे यह कि विचार देह-अभिमान गलाने का साधन है, बुद्धि का व्यायाम नहीं है। और तीसरे यह कि विश्वास प्रभु से सम्बन्ध जोड़ने में हेतु है, और कुछ नहीं। विश्वास के आधार पर हम अपना प्रेमास्पद स्वीकार करें कि हमारा कोई प्रेमास्पद है। आप कहें कि प्रेमास्पद कैसा है ? तो गम्भीरता से सोचिए कि प्रेमास्पद जाना नहीं जाता, माना जाता है, विश्वास किया जाता है। जैसे, किसी लड़की से कह दिया जाए कि जिससे उसका सम्बन्ध हो रहा है, उसका रंग

ऐसा है, सम्पत्ति इतनो है आदि। तो लड़की कहेगी कि जान लिया, क्योंकि पापा जी ऐसा कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह विश्वास है, ज्ञान नहीं।

शास्त्रों के द्वारा, गुरु के द्वारा प्रेमास्पद के बारे में जो कुछ सुनते हैं, वह हमारा ज्ञान नहीं है, विश्वास है। लोग उसे ज्ञान मान लेते हैं। विकल्प रहित विश्वास को ज्ञान मान लेना, क्या प्रमाद नहीं है ? अगर किसी ने प्रेमास्पद की महिमा को नहीं सुना है, तो क्या प्रेमास्पद नहीं है ? बिना महिमा सुने यदि किसी ने अपना प्रेमास्पद स्वीकार कर लिया है, तो उसकी ज्यादा दृढ़ता रहेगी। जो लोग महिमा सुन कर मानते हैं कि प्रभु में अनन्त सौदर्न्य है, अनन्त माधुर्य है, अनन्त ऐश्वर्य है, उनका सम्बन्ध, और एक आदमी यह स्वीकार करे कि भैया, चाहे जैसे हों, चाहे जहां हों, मिलें या न मिलें, पर हमारे प्रेमास्पद हैं—बताओ, इन दोनों में बढ़िया प्रेमी कौन होगा ?

यदि कुछ गुरु मिल जाएं, तो मुसीबत हो जाए। कोई कहेगा कि प्रेमास्पद तो वह है, जो धनुष-वाण लिए हुए हैं। दूसरा कहेगा कि नहीं-नहीं, बिल्कुल गलत बात है। प्रेमास्पद तो वह है, जो वंशी बजा रहा है। तीसरा कहेगा कि वाह ! प्रेमास्पद तो वह है, जो मुण्डों की माला पहने हुए है। चौथा कहेगा कि नहीं, विल्कुल गलत बात है। प्रेमास्पद तो निराकार है। पांचवा कहेगा कि नहीं, निर्विशेष है। तो ऐसे झगड़े वाला ज्यादा अच्छा प्रेमी हो सकता है, या कि वह, जो एक बात कह दे, कि भैया ! मेरे प्रेमास्पद चाहे जैसे हों, पर मेरे हैं। बदल तो

जाएंगे नहीं। क्या वे बदल जाएंगे हमारे मानने से? और न मानने से कोई घटिया हो जाएंगे? क्या दो प्रेमास्पद हैं? दो हैं नहीं। वे कैसे ही हों, अपने हैं।

आजकल लोगों ने प्रेमास्पद की सुनी तारीफ और फिर उसका बनाया कार्टून। फिर कहते हैं कि क्या बताएँ महाराज जी! हमने सुना तो यह था कि कोटि काम लजाते हैं, इतने सुन्दर हैं, पर ऐसा सुन्दर कोई चित्र तो देखा नहीं है। अगर ऐसा कहें, तो लोग कहेंगे कि तुम नास्तिक हो। भला भगवान् के विग्रह को ऐसा कहते हो? बाबा, हम ऐसा कहते नहीं, कहलवाते हो तुम। क्यों नहीं कह देते कि यह तो उनकी कृपा पर निर्भर है कि वे अपने सौन्दर्य का, अपने माधुर्य का, अपने ऐश्वर्य का बोध कराएँ, ज्ञान कराएँ?

लेकिन क्या तुम बिना प्रेमास्पद के रह सकते हो? यदि आपका हृदय कह दे कि नहीं रह सकते। तो प्रेमास्पद चाहे जैसे हों, हमारे अपने हैं। इसके अतिरिक्त विश्वास का और कोई उपयोग ही नहीं है भाई मेरे। प्रेमास्पद हमारे अपने हैं। वे चाहे जैसे हों, चाहे जहाँ हों, मिलें, न मिलें और हमारे साथ जो चाहें सो करें। अच्छा भैया, किसी प्रेमी से पूछो कि प्रेमास्पद की ओर से जो कुछ होगा, वह तुम्हारे लिए रसरूप होगा कि नीरस होगा? फिर हम कौनसी कण्डीशन रखें कि प्रेमास्पद ऐसा करें? सच्चा प्रेमी वही होगा, जो प्रेमास्पद की ओर से जो कुछ हो, उसी में राजी रहे।

एक दिन हम लोग सत्संग में बैठे हुए थे। एक सज्जन आए और बोले कि भगवान् के काम के लिए जा रहे हैं, जगह

दे दो। हमारे पास ठाकुर साहब बैठे थे। वे बोले कि हमारे ऊपर रख लो पैर। अरे, भगवान् के काम के लिए जा रहे हो, तो जगह ढूंढने की क्या जरूरत है? हमने कहा कि बात तो ठीक है। कहने का मेरा तात्पर्य यह था कि अगर हमारे प्रेमास्पद हैं, तो हमें कोई जरूरत नहीं है यह जानने की कि वे कैसे हैं। अतिथि जब किसी के घर जाता है, तो क्या पहले से तै कर लेता है कि आप हमें यह खिलाइए? मान लो, उसने और बढ़िया खिला दिया तो?

जितना हम सोचते हैं, उससे ज्यादा सुन्दर प्रेमास्पद निकले; अथवा उन्होंने मजाक में भद्दा वेष बना लिया, तो सन्देह और हो जाएगा। इसलिए उनके रूप के सम्बन्ध में क्यों सोचें? मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि हम बिना प्रेमास्पद के नहीं हैं, हम अनाथ नहीं हैं, हमारे प्रेमास्पद हैं। बस, इतनी-सी बात में विश्वास का उपयोग है। यही मैं निवेदन कर रहा था। इसी बात में विश्वास का उपयोग कीजिए कि हमारे प्रेमास्पद हैं, वे हमारे हैं, हम अनाथ नहीं हैं।

विचार का उपयोग करना हो, तो केवल इसी बात में कीजिए कि कोई भी उत्पन्न हुई वस्तु हमारे लिए नहीं है, कोई भी वस्तु हम नहीं हैं और कोई भी स्वीकृति हम नहीं हैं। इन बातों में विचार का उपयोग कर लीजिए। इससे आगे अगर आप विचार का उपयोग करेंगे, तो विचार के नाम पर न जाने क्या कर बैठेंगे! जब कोई भी उत्पन्न हुई वस्तु हमारी नहीं है, तो ममता गई। जब कोई भी उत्पन्न हुई वस्तु हम नहीं हैं, तो अहंता गई। जब कोई भी स्वीकृति हम नहीं हैं,

तो कर्तृत्व का अभिमान गया। मिला क्या ? चिर विश्राम। विचार देता है, चिर विश्राम, निर्विकारता और निर्वासना। तो विचार से मिला, चिर विश्राम। विश्वास से प्रेमास्पद से सम्बन्ध जुड़ गया। और भैया, परिस्थिति के सदुपयोग से राग रहित हो गए। सिद्धि हुई कि नहीं ? सफलता मिली कि नहीं ?

आप विचार कीजिए कि भाई, साधन निर्माण के लिए परिस्थिति सहायक है, विचार सहायक है और विश्वास सहायक है, चाहे तो यों कहो। चाहे यों कहो कि परिस्थिति भी साधन है, विचार भी साधन है और विश्वास भी साधन है। विचार साधन, विश्वास साधन और परिस्थिति साधन। परिस्थिति के सदुपयोग द्वारा राग रहित हो गए, विचार के द्वारा वासना रहित हो गए और विश्वास के द्वारा समर्पित हो गए, शरणागत हो गए। शरणागत हो गए तो, वासना रहित हो गए तो और राग रहित हो गए तो, अन्तर क्या पड़ेगा भैया ? जहाँ राग की गन्ध नहीं है, जहाँ वासना की गन्ध नहीं है, जहाँ अपने में अपना करके कुछ नहीं है, वहाँ अहं और मम् रहेगा क्या ?

तीनों प्रकार के साधनों से अहं का भी नाश हुआ और मम का भी नाश हुआ। अहं और मम् के नाश से हुआ क्या ? तीनों बातें—योग, बोध और प्रेम। अहं और मम् के नाश से योग, बोध और प्रेम मिला। योग, बोध और प्रेम क्या है ? यह प्रेमास्पद का स्वभाव है। प्रेमास्पद ने योग चिर शान्ति वालों के लिए रखा है, बोध सद्गति वालों के लिए रखा है और प्रेम अपने लिए रखा है। जो प्रेम का ही सम्पादन करते हैं, वे प्रेमास्पद के काम

आते हैं। जो बोध में सन्तुष्ट होते हैं, वे अपने काम आते हैं। जो योग में सन्तुष्ट होते हैं, वे चिर शान्ति पाते हैं और उनके दुख की निवृत्ति भी हो जाती है।

योग, बोध और प्रेम ही साधनतत्व या गुरुतत्व है। गुरुतत्व कहो, साधनतत्व कहो, या योग, बोध, प्रेम कह दो। साधनतत्व से प्रत्येक साधक की अभिन्नता होती है। साधन-तत्व से अभिन्नता होने पर साधक ऐसे जीवन को प्राप्त कर लेता है, जिस जीवन की मांग जगत् को भी है और जगतपति को भी है। यह साधनतत्व की महिमा है। इसलिए हम सबको साधनतत्व से अभिन्न होना है। साधनतत्व से अभिन्न होने में हम सब सर्वदा स्वाधीन हैं, समर्थ हैं। कोई भी पराधीन नहीं है, कोई भी असमर्थ नहीं है। इस दृष्टि से अगर हम और आप देख, तो मानव-जीवन बड़े ही महत्व का जीवन है, प्रत्येक व्यक्ति का जीवन बड़े ही महत्व का जीवन है। अगर यह कह दिया जाए कि संसार के सभी मानव महत्व की दृष्टि से समान हैं, तो बताइए, कितने रस की अभिव्यक्ति होगी, कितनी समता जीवन में आएगी ?

आज हमारी दशा क्या है ? परिस्थिति को जीवन मान लिया, तो दुखी हो रहे हैं। क्यों ? हाय ! हाय !! पोद्दार जी को इतना रुपया मिलता है, हमको नहीं मिलता ! मर जाओ सोच के मारे। मिल जाएगा क्या ? आप विचार करो। अगर हम यह मान लें कि परिस्थिति राग निवृत्ति का साधन है, तो बताइए, क्या अन्तर पड़ा ? आप विचार करें, क्या अन्तर पड़ा ? कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए भाई, प्रत्येक परि-

स्थिति राग निवृत्ति का साधन है। साधक को यह मानना ही पड़ेगा। बिना इसके स्वीकार किए आप चैन नहीं पा सकते।

अच्छा भाई, परिस्थिति जो होती है वह बनाई जाती है या अपने आप बनती है ? अपने आप बनती है। जब परिस्थिति अपने आप बनती है, तो वर्तमान को छोड़ कर अपनी दृष्टि आगे-पीछे पर जाएगी क्या ? नहीं जाएगी। जब आगे-पीछे पर अपनी दृष्टि नहीं जाएगी, तो वर्तमान सभी का निर्दोष है कि नहीं, सरस है कि नहीं, शान्त है कि नहीं ? लेकिन जब आगे-पीछे का चिन्तन आ जाता है, तब सब किरकिरा हो जाता है कि नहीं ? तो वर्तमान में किरकिराहट कब आती है ? जब हम अपने आप आने वाली परिस्थिति का आदर नहीं करते, स्वागत नहीं करते।

जीवन में दुख आया है तो राग निवृत्ति के लिए और सुख आया है तो राग निवृत्ति के लिए। चाहे यों कह दो कि दुख आया है विरक्ति के लिए और सुख आया है उदारता के लिए। उदारता में भी सुख का भोग नहीं होता भाई। उदारता अगर आपके जीवन में है, तो क्या आप सुख का भोग कर सकते हैं ? कदापि नहीं।

एक बार एक बड़े स्टेट के दीवान हमारे साथ उत्तराखण्ड की यात्रा में गए। जहाँ जिस चट्टी पर जाएँ, वहाँ बड़ी गन्दगी बड़ी मक्खियाँ। वे घबराएँ और बार-बार कहें कि जब हम दीवान थे, तब हमारे लिए डाक बंगले का इन्तजाम हो जाता था। हमने एक दिन सुना, दो दिन सुना। फिर

हमने कहा कि पापा ! हृदयहीन हुए बिना, बेईमान हुए बिना, अपना मूल्य बिना घटाए और पराधीन हुए बिना कोई आदमी सुख नहीं भोग सकता। अब वे बड़े घबराये। हमने कहा कि एक बात बताओ पापा, तुम को जो कुछ मिला है, क्या वह व्यक्तिगत है ? बोले, नहीं। तो पराई वस्तु को अपना मान कर ही तो सुख भोगते थे। वेईमानी आ गई कि नहीं ? पापा, आप ही बताओ, जिस जमीन पर आप सुख भोगते हो, उसके चारों ओर कितने लोग दुखी हैं ? हृदयहीन हो गए कि नहीं ? बिना हृदयहीन हुए क्या कोई सुख भोग सकता है ? नहीं भोग सकता। अच्छा, जो परिस्थिति मिली है, उससे अपना मूल्य बिना घटाये क्या सुख भोग सकते हैं ? पराधीन हो गए कि नहीं ? मोटर का मूल्य हो गया, कोठी का मूल्य हो गया, पद का मूल्य हो गया, योग्यता का मूल्य हो गया। अपना मूल्य कुछ नहीं रखा। हमने कहा कि इसी को आप अपना गौरव मानते थे क्या ? बोले, यह बात तो ठीक है।

कहने का तात्पर्य यह था कि भाई, सुख-भोग जीवन नहीं है। सुख तो उदार बनाने के लिए आया है। सुख जो आपके जीवन में आया, वह इसलिए आया कि आप उदार बन जाएँ और दुखियों के साथ आपकी एकता हो जाए। दुख जो है वह विरक्त बनाने के लिए आया है कि आप तो विरक्त हो जाएँ और सुखियों के साथ आपकी एकता हो जाए। देखिए, जब दुखी विरक्त हो जाता है, तब वह सुखी को देख कर प्रसन्न होता है। आप सुखी हैं, तो आप दुखी को देखकर करुणित हो जाएँ। सुख करुणित होने के लिए आया था और दुख विरक्त बनाने के लिए आया था।

भाई, सुख का भोगी और दुख का भोगी साधक नहीं होता। सुख-दुख का सदुपयोग करने वाला ही साधक होता है। इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि भाई, परिस्थिति राग निवृत्ति में ही हेतु है। इसलिए जो भी परिस्थिति अपने आप आए उसे आने दो। निर्बलता आए, निर्धनता आए, बीमारी आए, अनादर आए, तिरस्कार आए, जो भी आए, आने दो। जब प्रतिकूल परिस्थिति आए, तो उससे जीवन में सजगता आनी चाहिए, जब परिस्थिति अनुकूल आए, तो जीवन में उदारता बनी रहे। बस, इतना ही ध्यान रखने की बात है।

परिस्थिति के सदुपयोग द्वारा राग रहित होने का जो निश्चय है वह हमें सभी परिस्थितियों में समता प्रदान करेगा, सभी परिस्थितियों का आदर प्रदान करेगा। जब परिस्थिति का अनादर नहीं होगा, तब किसी भी परिस्थिति का आह्वान नहीं रहेगा और किसी भी परिस्थिति में ममता नहीं रहेगी। न ममता रहे और न आह्वान रहे, तब परिस्थिति से अतीत के जीवन में प्रवेश होगा कि नहीं ? यदि किसी परिस्थिति में ममता न रहे और किसी परिस्थिति का आह्वान न हो, तो परिस्थिति से अतीत के जीवन में प्रवेश हो जाएगा। अथवा यों कहो कि राग रहित हो जाएँगे और राग रहित होने से परिस्थितियों से अतीत के जीवन में प्रवेश होगा।

परिस्थिति से अतीत का जीवन कर्म सापेक्षा नहीं है। भाई, परिस्थिति से अतीत का जो जीवन है वह साधन-साध्य है। साधन का अर्थ क्या है ? साधन का अर्थ है कि परिस्थिति के द्वारा राग-निवृत्ति, विचार के द्वारा देहाभिमान का नाश

और विश्वास के द्वारा प्रेमास्पद की स्वीकृति। बस, इसी में सिद्धि है। परिस्थिति आवश्यक है राग रहित करने में, विचार आवश्यक है देहाभिमान नष्ट करने में और विश्वास आवश्यक है प्रभु से सम्बन्ध जोड़ने में।

अब कठिनाई यही होती है कि हम यह सोचने लगते हैं कि परिस्थिति से अतीत कोई जीवन नहीं है। जो हमारी परिस्थिति है वही हमारा जीवन है, ऐसा सोचने लगते हैं। चाहे वह आदर हो, अनादर हो, सुख हो, दुख हो। भाई, यह जीवन नहीं है। अनादर आया है, तो वह देहाभिमान का बोध करा देता है और आदर के राग की पूर्ति करा कर निवृत्ति करा देता है। विचार कीजिए, परिस्थिति के अनुसार किसी ने अनादर कर दिया, तो अनादर का जो दुख हुआ उससे पता चल गया कि अभी तक हम अपने को देह मानते थे। आदर से सुख मिला, तब भी यही पता चला।

अनादर के दुख ने यदि जागृति उत्पन्न कर दी, तो विचार द्वारा देहाभिमान नाश करना स्वाभाविक हो जाएगा। अगर देहाभिमान नाश हो गया, तो आदर और अनादर दोनों निरर्थक हो जाएंगे। इस दृष्टि से अपने आप आने वाला चाहे दुख हो और चाहे सुख हो, चाहे आदर हो और चाहे अनादर हो, यह सब साधनरूप ही हैं। किन्तु अगर हम यह मान लें कि आदर-अनादर और सुख-दुख ही जीवन है, तब तो साधन नहीं बनता। इसलिए परिस्थिति साधनरूप है राग रहित होने के लिए, विचार साधनरूप है देहाभिमान नष्ट करने के लिए अथवा यों कहो कि निरभिमानता प्रदान करने के लिए। और विश्वास

साधनरूप है प्रभु से सम्बन्ध जोड़ने के लिए। इन तीनों में-से किसी-न-किसी के अधिकारी तो हम होंगे ही। ऐसा तो आप नहीं कह सकते कि हम किसी के अधिकारी नहीं हैं।

जो साधक ऐसा है, जो मानव ऐसा है कि जो यह कहता है कि हम तो परिस्थिति से आगे की बात मान ही नहीं सकते, सोच ही सकते, तो वह परिस्थिति का सदुपयोग करें और राग रहित हो जाएं। यही आपने देखा होगा कि जिन्होंने संसार की सत्ता स्वीकार की, उन्होंने राग रहित होकर दुख-निवृत्ति को प्राप्त किया। जिन्होंने यह नहीं सोचा कि संसार से आगे भी कुछ है, उनको भी राग रहित होना अनिवार्य हो गया। जिन्होंने यह विचार किया कि 'शरीर मैं नहीं हूं,' उन्हें अमरत्व प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। जिन्होंने यह सोचा कि भाई, कोई अपना अवश्य है, उन्होंने प्रभु की सत्ता स्वीकार कर ली।

यह तीन बातें हो सकती है—(१) मैं कुछ नहीं (२) मैं सब कुछ (३) मैं किसी की मधुर स्मृति। किसी को तो यह रुचिकर होगा कि मैं कुछ नहीं हूं। किसी को यह रुचिकर होगा कि मैं सब कुछ। किसी को यह रुचिकर होगा कि मैं अपने प्रेमास्पद की प्रीति हूं। जिसको यह रुचिकर है कि मैं कुछ नहीं, वह भौतिकवादी है। जिसको यह रुचिकर है कि मैं सब कुछ, वह अध्यात्मवादी है। जिसको यह रुचिकर है कि मैं अपने प्रेमास्पद का प्रेम हूं, वह ईश्वरवादी है। इन तीन के अतिरिक्त कोई भी चौथी बात आप अपने सम्बन्ध में स्वीकार नहीं

कर सकते। मैं कुछ, यह भूल है। या तो मैं कुछ नहीं, या मैं सब कुछ, या मैं प्रेम।

मैं कुछ नहीं, यह कर्तव्यनिष्ठ होने के बाद सिद्ध होता है। मैं प्रेम, यह शरणागत होने के बाद सिद्ध होता है। मैं सब कुछ, यह अचाह होने के बाद सिद्ध होता है। इसीलिए कर्तव्यपरायणता, असंगता और शरणागति में समस्त साधन निहित हैं। यही कर्तव्यपरायणता शरणागत की पूजा है। यही असंगता शरणागत का समर्पण है। असगता कहो या समर्पण कहो, एक ही बात है। यही अध्यात्मवादी की जो असंगता है, वही अचाहपद है, कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। इस दृष्टि से कर्तव्यपरायणता, असंगता और शरणागति, यही धन केसा मूल तत्व हैं। इन तीनों में से किसी एक के आ जाने से तीनों अपने आप आ जाते हैं, ऐसा मेरा विचार है ।। ॐ ।।



३५

(ब)

प्रवचन :

जीवन में जो पराधीनता आ गई है, जीवन में जो नीरसता आ गई है, वह मिट सकती है। नीरसता का अर्थ होता है, अच्छा न लगना। अगर आप कभी भी फील या महसूस करते हैं कि अच्छा नहीं लगता, तो समझ लो कि कोई-न-कोई भूल अवश्य है। ऐसे ही अगर आप यह अनुभव करते हैं कि क्या बताऊं, जो मुझे करना चाहिए, उसको मैं जानता तो हूं, लेकिन करता नहीं हूं। तो अपनी भूल अवश्य है। किसी प्रकार की पराधीनता महसूस होती है, तो भी समझना चाहिए कि कोई-न-कोई भूल है।

भूल रहित होने से, भूल को जीवन में-से निकाल देने से मनुष्य में कर्तव्यपरायणता असंगता और आत्मीयता—यह तीन बातें अपने आप आती हैं। कर्तव्यपरायणता से जीवन जगत के लिए उपयोगी होता है, कारआमद होता है। असंगता से अपने लिए और आत्मीयता से जीवन प्रभु के लिए उप-योगी होता है। जीवन के यह तीन तत्व हैं—कर्तव्यपरायणता, असंगता और आत्मीयता। यह हम सभी को प्राप्त हो सकते

हैं। कैसे हो सकते हैं? आप सब जानते ही हैं कि किसी का जो कर्तव्य होता है, वही किसी का अधिकार होता है। जैसे वक्ता का जो कर्तव्य है, वही श्रोता का अधिकार है और जो श्रोता का कर्तव्य है, वही वक्ता का अधिकार है।

तात्पर्य यह है कि जहाँ दो सम्बन्धी मिलते हैं, वहाँ एक का कर्तव्य दूसरे का अधिकार होता है। इस दृष्टि से व्यक्ति का कर्तव्य समाज का अधिकार, सेवक का कर्तव्य सेव्य का अधिकार, आस्तिक का कर्तव्य प्रभु का अधिकार होता है। जो कर्तव्यनिष्ठ होते हैं, वे संसार के ऋण से मुक्त हो जाते हैं, उनमें संसार से ऊपर उठने की शक्ति आ जाती है।

क्या कारण है कि हम थोड़ी देर के लिए भी संसार के चिन्तन से रहित नहीं हो पाते, छूट नहीं पाते? इसका मूल कारण हमारी यही भूल है कि हमने अपने द्वारा संसार के साथ वह नहीं किया, जो करना चाहिए था। जब संसार के चिन्तन से नहीं छूटते, तो शान्ति और स्मृति कैसे उदित हो सकती है? संसार के चिन्तन से रहित नहीं होते, इसलिए शान्ति मिलती नहीं, स्मृति उदित होती नहीं। देखिए, हमें समाज के साथ, संसार के साथ ऐसी कोई चीज नहीं करनी है, जिसे हम नहीं कर सकते। वह कर्तव्य नहीं कहा जा सकता कि भाई, तुम वह करो, जो तुम नहीं कर सकते।

क्या किसी को वह ड्यूटी दी जा सकती है, जिसे वह न कर सके? क्या कोई अंधों से देखने के लिए कहेगा? कभी नहीं कहेगा। क्या निर्धन से कोई धन देने की बात कहेगा?

कभी नहीं कहेगा। क्यों ? संसार इतना अनुदार नहीं है, इतना बेईमान नहीं है कि वह हमसे यह कहे कि तुम वह करो, जो तुम नहीं कर सकते। अब आप सोचिए कि जब हमें वही करना है, जिसे हम कर सकते हैं। तो फिर हमारे जीवन में अकर्तव्य नहीं रहना चाहिए, कर्तव्यपरायणता आ जानी चाहिए। जब हमारे जीवन में कर्तव्यपरायणता आ जाती है, तो हम प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने पर, प्रत्येक कार्य के अन्त में अपने आप योगवित हो जाते हैं। अर्थात् हमें कर्तव्य का अन्त होते ही स्वत: अपने आप योग की प्राप्ति होती है और संयोग की दासता मिट जाती है।

संयोग माने, एक-दूसरे से मिलना। इसी से कर्तव्य का सम्बन्ध होगा। यह भाषा समझ में न आती हो, तो पूछ लेना। इससे क्या फायदा होगा कि हम बार-बार कहते रहें और आपकी समझ में न आए। भाई, बोलना इसलिए है कि आपकी समझ में आ जाए। तो मैं यह कह रहा था कि संयोग काल में कर्तव्य का प्रश्न उत्पन्न होता है, योग काल में कर्तव्य का प्रश्न नहीं रहता। संयोग उसके साथ मिलाता है, जिसके साथ हम सदैव नहीं रह सकते। योग हमें उसके साथ जोड़ता है, जिसके साथ हम सदैव रह सकते हैं और जो सदैव हमारे साथ रह सकता है। जो हमेशा नहीं रह सकता, उसके साथ संयोग होता है। तो संसार में एक-दूसरे के साथ संयोग है, योग नहीं है। संयोग वियोग में बदलता ही है। योग वियोग में नहीं बदलता। मिले हुए अलग हो जाते हैं, ऐसा विधान है, ऐसा कानून है।

इस विधान के अनुसार जब हम ऐसी वस्तु या व्यक्ति

के साथ मिले हुए मालूम हों कि जिससे अलग होना है, तो हमें उस संयोग काल में मिली हुई वस्तु का ठीक-ठीक स्तेमाल करना चाहिए, सदुपयोग करना चाहिए और मिले हुए व्यक्तियों की यथाशक्ति सेवा करना चाहिए। वस्तुओं का सदुपयोग और व्यक्तियों की सेवा—इसी का नाम है, कर्तव्य विज्ञान, इसी का नाम है, धर्म विज्ञान। वस्तुओं का सदुपयोग कब हो सकेगा ? जब वस्तु में हमारी ममता न हो। व्यक्तियों की सेवा कब बन सकेगी ? जब हम जिन व्यक्तियों की सेवा करनी है, उनको अपना न मानें, अपितु भगवान् को अपना मानकर उनके नाते व्यक्तियों की सेवा करें। अथवा सारे संसार को अपना मानकर जगत के नाते सेवा करें। ऐसा बिधान है।

सेवा करने के लिए सभी अपने हैं और अपने सुख के लिए इतने बड़े संसार में कोई अपना नहीं है। क्यों नहीं है ? अपने को जो चाहिए, वह संसार के द्वारा मिल नहीं सकता। आपको क्या चाहिए ? आपको अविनाशी जीवन चाहिए, स्वाधीन जीवन चाहिए, रसरूप जीवन चाहिए और चिन्मय जीवन चाहिए। तो चिन्मय जीवन, रसरूप जीवन, स्वाधीन जीवन, अविनाशी जीवन कभी किसी को संसार की सहायता से नहीं मिला है, न मिलेगा और न मिल सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि हमें जो चाहिए, वह संसार से नहीं मिल सकता। तो फिर संसार पर अपना अधिकार क्यों मानें, उसको अपने लिए अपराधी क्यों मान, उसको बुरा क्यों समझें ? क्योंकि हमें जो चाहिए, वह संसार हमे दे नहीं सकता।

अब प्रश्न पैदा होता है कि हमें जो चाहिए, वह फिर

कहाँ मिलेगा ? अनुभव से सिद्ध होता है कि हमें जो चाहिए, वह हममें और हम उसमें हमेशा ही मौजूद हैं। यह बड़े महत्व की बात है कि हमें जो चाहिए, वह हममें मौजूद है और सदा ही मौजूद है अथवा हमें जो चाहिए, हम उसी में हैं, उसके बाहर नहीं हैं। लेकिन हम अपनी भूल से अपने लिए उसकी जरूरत अनुभव करने लगते हैं, उसकी जरूरत महसूस करने लगते नहीं हैं, जो कभी था, कभी नहीं रहेगा। ऐसी बहुत-सी चीजें आपको मिली होंगी, जो पहले थीं और अब नहीं हैं और ऐसी बहुत-सी चीजें आप महसूस करते होंगे कि जो आगे मिलेंगीं।

जो पहले थी, अब नहीं है और जो अब है, आगे नहीं रहेगी; तो ऐसा मान ही लेना चाहिए कि वह है। नहीं और जो कभी अलग होगी, वह अभी भी अलग है। यानी हमसे शरीर कभी अलग होगा, तो ऐसा मान ही लेना चाहिए कि अभी भी शरीर हमसे अलग है। अगर अभी अलग नहीं है, तो हमसे कभी भी अलग नहीं होगा। ऐसा नियम है। आप सोचते हैं कि हमें कोई कभी हमेशा के लिए मिलेगा, ऐसा अगर आप मानते हैं, तो वह अभी भी हममें मौजूद है। इससे यह सिद्ध हुआ कि संसार हमसे अलग है और परमात्मा हममें मौजूद है। परमात्मा हमसे अलग नहीं है और संसार हमसे मिला नहीं है। तो जो मिला नहीं है, उसे हम अपनी भूल से मिला हुआ मान लेते हैं और जो मिला हुआ है, उसे हम अलग मानते हैं। मिले हुए को अलग मानना और जो अलग है, उसको मिला हुआ मानना, इसी का नाम भूल है, प्रमाद है, अज्ञान है।

यह अज्ञान है कि जो मिला हुआ नहीं है, उसको मिला हुआ

मान लिया और जो मिला हुआ है, उसको अलग मान लिया। मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि शरीर जो हमको मिला हुआ मालूम होता है, वह सचमुच अलग है और परमात्मा अलग मालूम होता है, जो सचमुच मिला हुआ है। अब इसका अनुभव कैसे हो ? इसका अनुभव करने के लिए पहली बात यह होगी कि हम पर जो परिवार का, समाज का, संसार का अधिकार है, उसको हम देते जाएं और यह मान ही लें कि हमारा संसार पर कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि अधिकार तो उसे कहते हैं, जिसे पाकर हम सदा के लिए अभय हो जाएं, निश्चिन्त हो जाएं, निर्मम हो जाएं, स्वाधीन हो जाएं, बार-बार न माँगना पड़े, सदा के लिए माँगना बन्द हो जाए। ऐसी कोई वस्तु संसार हमें दे नहीं सकता, क्योंकि उसके पास है ही नहीं। हमसे संसार केवल इतनी आशा रखता है कि जो हमें संसार की सहायता से मिला है, उसके द्वारा हम किसी प्रकार की हानि न पहुँचाते हुए संसार की सेवा करें। संसार से मिली हुई वस्तु संसार के समर्पित कर दें।

संसार से क्या मिला है ? वस्तु मिली है, योग्यता मिली मिली है, किसी-न-किसी प्रकार की सामर्थ्य मिली है। तो वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा हमारा जी चाहे, उसकी सेवा करेंगे। हम नहीं कहते हैं कि आप हमारी सेवा करें। चाहे जिसकी सेवा करें। लेकिन मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा किसी को हानि न पहुँचाएं, यह बहुत जरूरी बात है। जो व्यक्ति कभी किसी को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता, वह प्रकृति के विधान से अजातशत्रु हो जाता है। उसको सब अपना मानने को राजी हो जाते हैं। किसको ? जो कभी किसी

को हानि नहीं पहुँचाता। जो कभी किसी को हानि नहीं पहुँ-चाता, उसके द्वारा स्वतः संसार की आवश्यक सेवा होने लगती है। ऐसा विधान है।

जीवन का सत्य क्या निकला ? हम किसी को हानि न पहुँचाएं, तो मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा संसार की सेवा हो जाएगी। जो चीज अपने आप होती है, उसका अभिमान नहीं होता, उसके फल में आसक्ति नहीं होती। जो अपने आप होता है, उसका अभिमान क्यों होगा ? जो अपने द्वारा किया हुआ नहीं है, वह तो अपने आप प्राकृतिक ढंग से हो जाता है। सच्ची सेवा जो होती है, वह अपने आप स्वभाव से हो जाती है। ऐसे ही जब हम संसार पर अपना कोई अधिकार नहीं मानते, जो है भी नहीं, तो उसके त्याग का अभिमान भी नहीं बनता। संसार हम तक पहुँच ही नहीं सकता। जब संसार हम तक पहुँच ही नहीं सकता, तब संसार पर हमारा अधिकार ही क्या होगा ?

जो साधक यह मान लेता है कि संसार पर मेरा कोई अधिकार है ही नहीं, वह क्षोभ से, क्रोध से, राग से, द्वेष से बिल्कुल मुक्त हो जाता है। उसमें क्षोभ नहीं रहता, क्रोध नहीं रहता, राग नहीं रहता, द्वेष नहीं रहता। जिसमें यह चारों दोष नहीं रहते, वह निर्दोष होने के कारण योग से, बोध से और प्रेम से भरपूर हो जाता है। यानी उसे योग, बोध और प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। किसे ? जिसने संसार के अधिकार पूरे किए और यह जान लिया कि संसार पर मेरा कोई अधि-कार नहीं है।

जब योग प्राप्त हो जाता है, तब जीवन में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं रहती, ऐसा नियम है। यह योग का बाहरी फल है। भीतरी फल क्या है ? उसमें असमर्थता नहीं रहती। तीसरा फल क्या है ? हम योग से अपने स्वरूप में स्थित होते हैं। यह तीन फल योग के हैं—अपने स्वरूप में स्थित होना, असमर्थता का नाश होना और अशान्ति का नाश होना। जहां असमर्थता और अशान्ति का नाश हो जाता है, वहाँ स्वाभाव से ही उदारता, शान्ति और स्वाधीनता आ जाती है। यह नियम है। तो यह उदारता, शान्ति और स्वाधीनता जो है यह मानव का अपना स्वरूप ही है, और कोई चीज नहीं है।

जब मानव शान्ति, स्वाधीनता और उदारता के अभिमान को छोड़ देता है, अपनी कोई विशेषता अनुभव नहीं करता, तब उसमें परमात्मा के साथ आत्मीयता आ जाती है। यानी उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि परमात्मा मेरा अपना है, संसार में मेरा कुछ नहीं है और मुझे संसार से कुछ नहीं चाहिए। यह उसका जीवन हो जाता है। वह मुँह से बकता नहीं है कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिए या परमात्मा मेरा अपना है। इसका वह पाठ नहीं करता, चिन्तन नहीं करता। यह उसका अपना जीवन हो जाता है।

आप ही सोचिए, जितने भी लोग यहां इस भूमि पर बैठे हैं, सब जानते हैं कि भूमि हमारी अपनी नहीं है। यह विद्यालय की भूमि है। विद्यालय की भूमि है, मेरी भूमि नहीं

है, इसका आप चिन्तन थोड़े ही करते हैं। इसको आप बार-बार मन-वाणी से दोहराते थोड़े ही हैं। आप जानते हैं कि यह भूमि अपनी नहीं है, विद्यालय की भूमि है। इस जानने का यह प्रभाव होता है कि इस भूमि में आपकी ममता न होने से इसका लोभरूपी विकार पैदा नहीं होगा, अभिमानरूपी विकार भी पैदा नहीं होगा।

इसी प्रकार शरीर भी मेरा अपना नहीं है, तो इससे मोह नहीं उत्पन्न होगा। ऐसे ही योग्यता मेरी अपनी नहीं है, तो अभिमान उत्पन्न नहीं होगा। ऐसे ही कोई वस्तु मेरी अपनी नहीं है, तो कोई लोभ नहीं उत्पन्न होगा। तो इस बात से कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, हम सबको निर्विकारता यानी निर्लोभता, निर्मोहता, निष्कामता की प्राप्ति हो जाती है। क्षोभ नहीं होगा, तो क्रोध नहीं होगा। क्योंकि अशान्ति हो, तो क्षोभ हो, क्रोध हो। जब कोई कामना हो, तो अशान्ति हो। निर्ममता, निष्कामता, असंगता कहो, चाहे निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता कहो।

जहाँ स्वाधीनता आ जाती है, वहां अपने आप उदारता और प्रेम भी आ जाता है। जो स्वाधीन है, वही उदार है और वही प्रेमी है। परमात्मा क्योंकि परम स्वतन्त्र है, इसलिए वह परम उदार और परम प्रेम से भरपूर भी है। अगर परमात्मा पराधीन होता, तो न तो वह उदार होता और न प्रेमी होता। जो अपने को पराधीन अनुभव करते हैं, वे उदार भी नहीं हो पाते और प्रेमी भी नहीं हो पाते। इसलिए हम सबको सबसे पहले अपने ज्ञान के प्रकाश में इस सत्य को स्वीकार करना है,

अनुभव करना है कि संसार में मेरा करके कुछ है नहीं, संसार से मुझे कुछ चाहिए नहीं।

जब संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिए और संसार में मेरा कुछ नहीं है तथा संसार पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, तब फिर हमारे और संसार के बीच का जो काल्पनिक सम्बन्ध है, वह नाश हो जाता है। जब हमारे और संसार के बीच का सम्बन्ध टूट जाता है, तो हमारे और परमात्मा के बीच में एकता हो जाती है। संसार से जो असंग होता है, वही परमात्मा से अभिन्न होता है। ऐसा विधान ही है। क्योंकि हम बिना आधार के नहीं रह सकते। आधार के बिना अहंकार का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। जब संसार का आधार टूट जाता है, जब संसार से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता निर्मम होकर, असंग होकर, निष्काम होकर, तब परमात्मा से हमारा नित्य सम्बन्ध, जातीय सम्बन्ध और आत्मीय सम्बन्ध तीनों प्रकार का सम्बन्ध हो जाता है।

नित्य सम्बन्ध योगियों का, जातीय सम्बन्ध ज्ञानियों का और आत्मीय सम्बन्ध प्रेमियों का होता है। यानी योगी परमात्मा से नित्य सम्बन्ध अनुभव करते हैं, विवेकीजन परमात्मा से जातीय सम्बन्ध अनुभव करते हैं और प्रेमीजन परमात्मा से आत्मीय सम्बन्ध अनुभव करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिनका जगत से सम्बन्ध नहीं रहता, उन्हीं का परमात्मा से सम्बन्ध हो जाता है। नित्य सम्बन्ध से शान्ति, जातीय सम्बन्ध से मुक्ति और आत्मीय सम्बन्ध से भक्ति हम सबको मिल जाती है। तो दो बातें सामने आईं कि संसार में

मेरा कुछ नहीं है, किन्तु फिर भी जो संसार ने मुझको अधिकार दिया है, उसके द्वारा संसार की सेवा करनी है। देखिए, संसार का दिया हुआ अधिकार है कि मैं बोलूं और आप सुनें। तो बोलकर सुनने वालों के अधिकार की रक्षा कर दें। इसी तरह संसार की ओर से जो मिला है, उस सामग्री के द्वारा संसार के अधिकारों की रक्षा कर दें।

संसार पर अपना अधिकार है नहीं। अपना अधिकार छोड़ने का अभिमान मिथ्या है—यह सही भाषा नहीं है, क्योंकि अधिकार है ही नहीं, तो अधिकार छोड़ेंगे क्या ? संसार पर अधिकार है नहीं, और संसार का जो हम पर अधिकार था, वह संसार की सेवा में समर्पित कर दिया। तो संसार से सम्बन्ध रहा नहीं। जब हमारा संसार से सम्बन्ध नहीं रहा, तो स्वतः परमात्मा से सम्बन्ध हो जाता है। परमात्मा के सम्बन्ध से योग, बोध और प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। योग में शक्ति और शान्ति है, बोध में मुक्ति है और प्रेम में भक्ति है।

इस दृष्टि से हम सबको शक्ति, मुक्ति और भक्ति मिल सकती है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। जब तक हम शक्ति, मुक्ति और भक्ति को प्राप्त नहीं करते, तब तक किसी प्रकार भी चैन से नहीं रह सकते। इस दृष्टि से संसार की सेवा करके संसार से सम्बन्ध तोड़ कर भगवान् से जातीय सम्बन्ध, नित्य सम्बन्ध और आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करके हम सब सेवा से, त्याग से, उदारता से, स्वाधीनता से, योग से, बोध से, प्रेम से भरपूर होकर कृतकृत्य हो सकते हैं। इसी सद्भावना के साथ ! ॥ ॐ ॥



३६

(अ)

प्रवचन :

प्रभु ने ज्ञान केवल इसलिए दिया है कि मानव स्वाधीन होकर, अजर-अमर होकर सदा-सदा उनको लाड़ लड़ाता रहे, रस देता रहे। उन्हीं का दिया हुआ यह प्रेम है, उसी से उनकी नित्य पूजा की जाए, सतत पूजा की जाए और उन्हें रस दिया जाए। वे कैसे हैं ? इसे तो शायद वे भी नहीं जानते। किन्तु उनके सम्बन्ध में जिस किसी ने जो कुछ कहा है, वह कम है। क्यों भाई ? आप स्वयं सोचिए, सब कुछ देकर, सब कुछ लेकर जो अपने आपको न्योछावर कर सकता है, अपने से अभिन्न कर सकता है, अपने में सदा के लिए स्थान दे सकता है, उसकी महिमा का, उसकी सामर्थ्य का, उसके सौन्दर्य का क्या कोई वारापार हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता। पर दुख की बात तो यह है कि फिर भी क्या वे इतने अपने मालूम होते हैं, जितनी कि उनकी दी हुई वस्तु, सामर्थ्य, योग्यता अपनी मालूम होती है ?

सच बात तो यह है कि जो उन्हें नहीं मानते हैं, उन्हें भी वे अपने समान बना लेते हैं और इतना छिपकर बनाते हैं

कि उन्हें पता भी नहीं लग पाता कि उन्होंने हमें वह बना दिया, जो वे स्वयं थे। वे क्या थे, वे कहाँ थे, वे क्या नहीं थे, वे कब नहीं थे, वे कहाँ नहीं थे ? वे सदैव थे, सदैव हैं और सभी के हैं। सभी के होते हुए भी उनकी एक महिमा है और वह यह महिमा है कि वे सभी से अतीत भी हैं, सभी के नित्य साथी भी हैं, सभी के दोस्त भी हैं, सभी के प्रिय भी हैं, सभी के मालिक भी हैं और सभी के दास भी। आप कहेंगे कि मालिक दास कैसे हो सकता है ? भाई देखो, उनके दास को जो रस मिलता है, उस रस का भी वे ही पान करते हैं और स्वयं प्रिया होकर अपने आपको भी रस देते हैं।

प्रिया भी वे, प्रीतम भी वे, दास भी वे, स्वामी भी वे, शरणागत भी वे और शरण्य भी वे। हम अपने में देखें कि ऐसे जो हम सबके अपने हैं, उनकी महिमा के अतिरिक्त कोई और चीज तो नहीं रह गई है, अथवा कहीं कोई चीज दिखाई तो नहीं देती, उनकी सत्ता से भिन्न अन्य कोई सत्ता तो नहीं मालूम होती ? इस बात को हम अपने में देखें। हम देखें कि हम क्या बला हैं ? हमारा निर्माण उन्हीं ने किया है और अपने में-से किया है, यह बात वे तुम्हारी वाणी से सुनना चाहते हैं। तुम्हारी वाणी से मतलव है कि यह वाणी उनकी ही दी हुई है, पर इस ढंग से दी है कि पाने वाले को यही मालूम होता है कि यह वाणी अपनी ही है। इससे अधिक आत्मीय भाव, अपनेपन का भाव और क्या हो सकता है ? उनकी दी हुई है और मालूम होती है कि अपनी है।

जब हम अपने को उन्हें इस भाव से देते हैं कि तेरा

तुझको देता हूं, यद्यपि यह तेरा है, लेकिन इस समय मेरा है। अब मैं तेरा दिया हुआ तुझको देता हूं। तब वे स्वयं बड़े अधीर होने लगते हैं, आकुल-व्याकुल होने लगते हैं कि मैंने मानव को सब कुछ पहले ही दे दिया, अब मेरे पास क्या रह गया है कि जिससे मैं इसका बदला चुका सकूं ! मानव ने मेरा दिया हुआ अब मुझे दे दिया है। तब उनसे नहीं रहा जाता और वे कहने लगते हैं—मैं तेरा हूं, मैं तेरा हूं। जब प्रेमीजनों को उनकी यह आवाज सुनाई देती है, तो प्रेमीजन कहने लगते हैं– तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, हर समय तुम्हीं हो, तुम्हीं मेरे जीवन हो, प्राणधन हो, प्राणेश्वर हो, प्राणबल्लभ हो, प्राण प्रिय हो, तुम्हीं हो, तुम्हीं हो। जब वे यह सुनते हैं, तब वे स्वयं कहने लगते हैं– नहीं-नहीं, मैं तेरा हूं, मैं तेरा हूं। यहाँ तक कहने लगते हैं कि तूने जो कुछ किया है, वह कोई नहीं कर सकता।

क्या दिया है तूने ? तूने अपने को मुझ पर न्यौछावर किया है, अपने आपको मेरे लिए खो दिया है। अब तो मैं तेरा ऋणी हूं। तब प्रेमीजन कहने लगते हैं कि मेरा तो कभी कुछ था नहीं, तुम्हारा ही था और तुम्हीं थे, तुम्हीं हो, जो आकर्षण है वह तुम्हारा ही है, सब कुछ तुम्हीं से हुआ है, सब कुछ तुम्हीं में है। ऐसा जो प्रीति और प्रियतम का नित्य विहार है, यही मानव का निज-जीवन है। आप सच मानिए। उन्होंने क्या नहीं किया ? उन्होंने सभी के लिए सब कुछ किया है। वे स्वयं कामना होकर प्रेमियों से आशा रखते हैं कि कोई मुझे अपना कहता और अपना सर्वस्व मुझ पर उड़ेल देता !

महानुभाव ! क्या कहा जाए ? सच बात तो यह है कि कहने और जानने की कोई बात हीं नहीं है। क्या जानें, क्या

कहें ? वे सदैव अपने ही हैं, सब कुछ उन्हीं का है—यह मान लेना ही मानव का परम पुरुषार्थ है, अचूक और अन्तिम उपाय है। यही एक उपाय है। यह उन्होंने स्वयं दिया है, आप सच मानिए। उनके पूजन के लिए उनकी आत्मीयता से भिन्न और कुछ नहीं है। उनकी आत्मीयता से ही उनका पूजन होता है और वे प्रसन्न होते हैं, आनन्दघन होते हुए भी आनन्दित होते हैं और स्वयं सततरूप से देखते रहते हैं। किसको ? जो उनका अपना है उसको। वे उसे देखते रहते हैं, अपनाते रहते हैं, अपना प्रेम उड़ेलते रहते हैं, अपना सर्वस्व न्यौछावर करते रहते हैं। यह उनका सहज स्वभाव है।

हम सब तैयारी के साथ नहीं, सहजभाव से स्वीकार करें कि वे सदैव अपने हैं, अपने में हैं। यह स्वीकार करना कि कोई और नहीं है, कोई गैर नहीं है—यही साधक का जीवन है। जो कुछ सुनने में आया, देखने में आया, समझ में आया, सोचने में आया—बुद्धि इसे बता कर मौन हो जाती है। तब वे अपना निज-रस प्रदान करते हैं। उनके निज-रस में क्या है, वह कितना मधुर है, कितना सुन्दर है, कितना प्रिय है ! इसका वर्णन किसी भाषा और भाव से सम्भव नहीं है। उनका निज स्वभाव ही प्रेमतत्त्व है। अथवा यों कहो कि उनका निज-स्वभाव तत्व-प्रेम है, उनका निज-स्वरूप तत्व-ज्ञान है और सामर्थ्य उनकी बाह्य महिमा है, अन्तर महिमा नहीं।

जो साधक असमर्थता से पीड़ित होते हैं, अशान्ति से पीड़ित होते हैं, पराधीनता से पीड़ित होते हैं, उन्हें वे सामर्थ्य प्रदान करते हैं, स्वाधीनता प्रदान करते हैं, अमरत्व प्रदान करते

हैं। फिर वे उन्हीं में स्वयं छिपकर रहते हैं। क्यों छिपकर रहते हैं ? कोई स्वाधीन होकर अमर होकर, शान्त होकर एक बार तो कहे कि हे प्यारे ! यह सब कुछ तुम्हारा दिया हुआ है, सब में तुम्हीं-तुम हो, और कोई है नहीं; अब तुम प्यारे लग जाओ। यह मांग उसकी होती है जो शुद्ध है, बुद्ध है, मुक्त है। आप कहेंगे कि शुद्ध-बुद्ध-मुक्त में भी कहीं मांग होती है ? बात तो ठीक है। पर वह काम-रहित है, कि मांग-रहित है ? विचार करो।

अरे भाई, मुक्त किसे कहते हैं ? जो काम-रहित है। क्या अनन्त रस की मांग मुक्त में नहीं है ? यदि वह मुक्त में न होती, तो उसे मुक्ति खारी नहीं लगती। मुक्त को मुक्त भी खारी लगती है। कब ? जब अखण्ड रस की भूख को अनन्त रस की भूख में बदला हुआ पाता है। उनका रस अपार है, अखण्ड है, अनन्त है। अनन्त रस की अभिव्यक्ति उनकी प्रियता में है, उनके बोध में नहीं। उनके बोध में अखण्ड रस है, उनकी प्रियता में अनन्त रस है। वे अपनी ही महिमा से, अपनी ही करुणा से, अपनी ही उदारता से प्रेरित होकर अपनी प्रियता प्रदान करें—यह भूख साधक की अन्तिम भूख है।

वे कैसे हैं, क्या करते हैं, कहां हैं—इस पचड़े में न पड़ें। केवल थोड़ी-थोड़ी देर के बाद अगर कोई हूक उठे, अगर कोई पीड़ा उठे, तो यह उठे कि तुम प्यारे लगो, तुम प्यारे लगो ! तुमने सब कुछ दिया है, सभी को दिया है, सदा देते हो; किन्तु तुम प्यारे लगो ! उनका प्यारा लगना उनके लिए रसरूप है और अपने लिए भी रसरूप है। वह रस ऐसा नहीं है कि

जिसकी पूर्ति हो। बन्धन की निवृत्ति होती है, मुक्ति की पूर्ति होती है अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है। किन्तु उनकी प्रियता से अभिव्यक्त जो उनका रस है, उसकी कभी पूर्ति नहीं होती। इसीलिए प्रेमीजन सदैव यही सोचते रहते हैं, उनकी यही पीड़ा रहती है कि हे प्यारे! तुम प्यार देते हो, तुम सब कुछ देते हो, यह ठीक है; पर मुझे तो प्यारे लगो, प्यारे लगो!

आप जानते हैं, जब कोई प्यारा लगता है, तो प्यारे को तो रस मिलता ही है, अपने को भी रस मिलता है और इतना रस का प्रवाह बढ़ता है कि प्यारा लगना भी ऐसा ही लगता है कि मानो, प्यार है ही नहीं। प्रेमियों को प्रेम का भास नहीं होता। उन्हें तो प्रेम की भूख रहती है। प्रेमी क्या चाहता है? वे जहाँ रहें आनन्द में रहें, उनको भले ही मेरी याद न आए। ऊँचे प्रेमियों की यह दशा होती है कि वे सोचते हैं कि कहीं मेरी याद में उनको पीड़ा हो गई, तो मुझसे सही नहीं जाएगी। उनकी याद में मैं पीड़ित रहूँ, मैं दुखित रहूँ, मैं तड़पता रहूँ, तरसता रहूँ। यदि मेरी याद में उन्हें पीड़ा हुई, तो यह सुन कर मेरा हृदय फट जाएगा।

उनकी प्रियता से ही उनकी पूजा करनी है, उनकी महिमा से ही उनकी स्तुति करनी है और उनका होकर ही उनकी उपासना करनी है। उनकी प्रियता ही मेरा जीवन हो जाए। आज उनका जन्मोत्सव है। वे प्रसन्न हैं, वे करुणित हैं, वे बड़े उदार हैं। उनके प्रेमियों ने उन्हें इतना अपनापन दिया है कि वे प्यार को बांट रहे हैं, बरसा रहे हैं। हम यही कहें कि हे प्यारे! तुम्हारा प्यार, तुम्हारी आत्मीयता ही मेरा

जीवन है, मेरा और कोई जीवन नहीं है, तुम्हीं मेरे अपने हो। यह तुम्हीं ने मुझे अपनी ओर से दी है।

आप जानते हैं, मेरे इस कठोर जीवन का मौलिक प्रश्न क्या था ? यह नहीं था कि मैं उनको देखता रहूँ, उनसे मिलता रहूँ। बड़ा छोटा-सा प्रश्न था कि मुझे वह सुख दो, जिसमें दुख न हो; वह जीवन दो, जिसमें मृत्यु न हो; वह पूर्णता दो, जिसमें अभाव न हो। वे सब कुछ देते हैं। किन्तु मैं सच कहता हूँ कि उनकी प्रियता में जो रस है, वह रस पूर्णता में नहीं है, उस सुख में नहीं है, जो दुख से रहित है; उस जीवन में नहीं हैं, जो मृत्यु से रहित है। उनकी प्रियता कितनी रसरूप है ! इस सम्बन्ध में कोई कुछ कह नहीं सका, कह नहीं पाता। जितना महसूस करता है, उतना भी नहीं कह पाता। वह केवल संकेत-मात्र है।

उनकी प्रियता उनसे मांगो, उनकी आत्मीयता उनसे मांगो, उनकी महिमा उनसे मांगो। और कुछ माँगने योग्य है ही नहीं। क्यों नहीं है ? आप ही सोचिए कि उन्होंने अविनाशी जीवन की उपलब्धि के लिए ज्ञान का प्रकाश दिया है और विश्व-जीवन में आदर पाने के लिए उदारता का रस तथा करुणा का रस उन्होंने दिया है। अब और क्या चाहिए ? जहाँ आप रहते हैं, वहाँ आदर ही तो चाहते हैं, सम्मान ही तो चाहते हैं। हम क्या बताएँ ? उनकी दी हुई योग्यता का जब मनुष्य प्रकाशन करता है, तो उसमें अपना नाम लिखता है और यह चाहता है कि लोग यह समझते रहें कि इसका लेखक अमुक है। क्या सचमुच कोई लेखक लेखक है, कोई वक्ता

वक्ता है, कोई दाता दाता है ? वे ही लेखक हैं, वे ही वक्ता हैं, वे ही दाता हैं। किन्तु अपने को कितना छिपाते हैं ! क्या कहीं मालूम होता है कि वे बोल रहे हैं ?

लोग सोचते हैं कि शरणानन्द बोल रहा है, बड़ा अच्छा बोलता है, बड़ा ठीक बोलता है, युक्तियुक्त बोलता है । लेकिन सच बात तो यह है कि भला, वे वक्ता न हों, और कोई वक्ता हो जाए ? वे लेखक न हों, और कोई लेखक हो जाए ? वे कलाकर न हों, और कोई कलाकार हो जाए ? वे दार्शनिक न हों, और कोई दार्शनिक हो जाए ? नहीं हो सकता, नहीं हो सकता । सभी के सब कुछ वे ही हैं ।

आज हम सब उनका उत्सव मना रहे हैं, ओत्साहित हो रहे हैं और उनकी करुणा, उनकी उदारता, उनकी आत्मीयता का पान कर रहे हैं । वे धन्य है ! धन्य है !! उनके लिए क्या कहा जाए ! वे अपनी प्रियता की भूख बढ़ाते रहें ! मैं उनके प्रेम की भूख से आकुल रहूँ, व्याकुल रहूँ, पीड़ित रहूँ—यही पुनः-पुनः मांग होती रहे, उनकी प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती रहे ! उनके दिए हुए बल के द्वारा उनकी पूजा होती रहे, उनकी दी हुई आत्मीयता से उनकी स्मृति होती रहे और उत्तरोत्तर उनकी प्रियता बढ़ती रहे !

अनन्त की प्रियता अनन्त है, नित्य की प्रियता नित्य है, चिन्मय की प्रियता चिन्मय है । वह प्रियता जड़ नहीं है, क्रिया नहीं है, अभ्यास नहीं है । यह उनका विश्वास है । उनका विश्वास ही उनकी प्राप्ति का अन्तिम अचूक उपाय है । और

कोई उपाय है ही नहीं ! उनके विश्वास से ही उनको पाया है, और किसी प्रकार नहीं। महाराज ! विचारकों ने अपने को पाया है, अमरत्व को पाया है, जीवन-मुक्ति को पाया है। पर उनके विश्वासियों ने उनको पाया, उनकी प्रियता को पाया, उनकी आत्मीयता को पाया। प्रभु-विश्वास ही गुरुतत्व है, और कोई गुरुतत्व नहीं है। प्रभु-विश्वास ही प्रेमियों का गुरुतत्व है। उनका विश्वास उनका ही दिया हुआ है, यह अपना उपार्जित नहीं है।

उपार्जन के लिए तो उन्होंने सामर्थ्य दी है और ज्ञान का प्रकाश दिया है। उनकी दी हुई सामर्थ्य के सदुपयोग से मानव सेवक कहलाया है. उदार कहलाया है, और न जानें, संसार ने उसको क्या-क्या कहा है। किन्तु उनके विश्वास ने उनकी आत्मीयता प्रदान की है, प्रियता प्रदान की है। उनके विश्वास के बल पर अन्य सभी विश्वासों को मिटा दो, त्याग दो। उनके सम्बन्ध के लिए अन्य सभी सम्बन्धों को अपने भीतर से निकाल दो। अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई विश्वास नहीं है। उनका विश्वास ही विश्वास है, उनका सम्बन्ध ही सम्बन्ध है। उनकी प्रियता ही जीवन है। और कोई जीवन नहीं है।

आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम उनके विश्वास को अपनाएँ और उनसे कहें कि तुम स्वयं अपना विश्वास हमें दे दो, तुम अपनी महिमा में अविचल आस्था कर दो, तुम अपनी उदारता में अविचल आस्था कर दो। सब कुछ

है तो तुम्हारा ही। मैं भी तुम्हारा ही हूँ। तुमने मेरा निर्माण अपने में-से ही किया है, और किसी में-से नहीं किया। अपने में-से जिसका निर्माण किया है, उसे अपनी आत्मीयता दे दो, दे दो प्यारे! दे दो। और कुछ नहीं चाहिए। आप ही सोचिए, और है ही क्या?

जिसे आप देख रहे थे, जिस पर आप सोच रहे थे, जिस पर आप मनन और निधिध्यासन कर रहे थे, वह तो सचमुच कुछ नहीं था, कुछ नहीं है। वे ही सब कुछ हैं। जब वे ही सब कुछ हैं, तो उनका विश्वास ही उनको मोहित करता है, उनकी आत्मीयता ही उनको द्रवित करती है, आनन्दित करती है। उनकी प्रियता उनको आनन्द-विभोर कर देती है। अगर मांगना है, तो यही मांगना है, पाना है, तो यही पाना है। कुछ कहना है, तो यही कहना है, कुछ सुनना है, तो यही सुनना है। और कुछ नहीं कहना है, कुछ नहीं सुनना है, कुछ नहीं मांगना है, कुछ नहीं पाना है।

तुम मेरे हो, तुम मेरे हो यही कहना है, यही सुनना है, यही पाना है। और कुछ पाने, कहने और सुनने के लिए है ही नहीं। क्या आज इस महोत्सव के अवसर पर हम उस आत्मीय प्रभु को अपनाएँगे, उन्हीं से अपने जीवन को गुँजारित करेंगे, महसूस करेंगे? करेंगे, अवश्य करेंगे। वे ही कृपा करके अपने प्रेमियों के इस मार्ग को पूरा करने के लिए स्वयं किसी की गोद में लाला बनकर बैठते हैं, किसी के साथ सखा बनकर खेलते हैं, किसी के साथ प्रियतम होकर नित्य प्यार का पान करते हैं। उन्होंने अपनी ही कृपा से, अपनी ही महिमा से प्रेरित

होकर अपने को प्रकाशित किया है। भला बताओ, वे अपने आपको प्रकाशित न करते, तो कौन उनकी चर्चा कर पाता, कौन उनके अस्तित्व को स्वीकार कर पाता ?

वे तो सदा-सदा ही अपनी महिमा में आप स्थित हैं। अनन्त विशेषण उनके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, फिर भी वे सदा निर्विशेष हैं। किन्तु प्रेमियों के प्रेम का पान करने के लिए वे सबिशेष हैं, सगुण हैं, साकार हैं। वे मिलते हैं, बिछुड़ते हैं और वे स्वयं आकुल-व्याकुल होते हैं और अपने प्रेमियों को आकुल-व्याकुल करते हैं। उनकी लीला का कोई वारापार नहीं है। महानुभाव ! हम सबके जो प्राणघन हैं, प्राणेश्वर हैं, निज हैं, आज उनके जन्मोत्सव पर सब कुछ कर डालो। और कुछ करना, जानना, या पाना शेष न रह जाए। सोचो भाई, क्या करना है ?

मैं सच कहता हूँ कि अगर सम्भव हो सके, तो उनका दिया जो आश्रम है, उनकी दी हुई जो वस्तु है आज उन पर लुटा दो। इस उत्साह में लुटा दो कि आज हमारे प्यारे ने प्रेमियों को रस देने के लिए अपने को प्रकाशित किया है, अपनी महिमा अपने आप बताई है। आप सच मानिए, अगर वे स्वयं न कहते, तो गीताकार की गीता अधूरी रह जाती। उन्होंने कहा कि भैया ! तू सब पचड़े को छोड़ दे। देख, तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, तू मेरा अत्यन्त अन्तरंग है, अपना है। अब मैं तुझे अपनी वह बात जो अब तक नहीं बताई है, तुझे बताता हूं कि मेरी शरण में आजा, तू मेरी शरण में आजा।

शरणागति प्रभु की अन्तिम गुह्यतम करुणा है, उदा-

रता है, महिमा है। हम सब शरणागत हैं, वे हमारे शरण्य हैं। वे सब कुछ करते हैं और मौज करते हैं हम। हम उनको 'तुम' कह कर पुकारते हैं और वे हमको 'अपना' कहते हैं। आप सोचिए, उन्होंने शरणागतों के मोह का नाश किया है, उन्हीं ने शरणागतों को अपनी स्मृति दी है और शरणागतों का सब कुछ किया है। वे ही सब कुछ करते हैं। हम शरणागत हैं और उनकी ही दी हुई यह शरणागति है।

मैं आपको क्या बताऊं ! मुझसे गुरुदेव ने कहा कि भैया, तू भजन किया कर। मैंने कहा कि भजन क्या होता है ? उन्होंने कहा कि राम-राम कहा कर। मैंने कहा कि मेरा तो राम नाम में विश्वास ही नहीं है। वे गुरुदेव के रूप में प्रकट होकर प्रसन्न हुए, करुणित हुए। आप जानते हैं, कोई कहे कि हमें उनके नाम पर विश्वास नहीं है, तो कितना दुख हो ? लेकिन उन्होंने उदारता का भेष धारण किया और कहा कि भैया ! कोई बात नहीं है। अगर तुमको राम नाम में विश्वास नहीं है, तो कोई बात नहीं। क्या तुमको यह भी विश्वास नहीं है कि वे हैं ? मैंने कहा कि उनके होने में तो विश्वास है। तो उन्होंने कहा कि यार ! फिर क्या है, अब क्या रह गया ! जब तुम यह मानते हो कि परमात्मा है, ईश्बर है, भगवान् है; तब फिर क्या रह गया यार ? तुम उनके शरणागत हो जाओ। वे स्वयं शरणागत का भेष बना कर आए और मुझे अपनी शरणागति प्रदान कर गए।

आप जानते हैं, शरणागत को कुछ करना नहीं पड़ता। उसे तो याद आती है, वह याद करता नहीं है। उसे विरह

होता है । वह विरही भी अपने बल से नहीं बनता, वे करुणा-सागर ही अपना विरह देते हैं, अपना मिलन देते हैं। उनका मिलन भी नित्य है, उनका विरह भी नित्य है। नित्य विरह और नित्य मिलन शरणागत को मिलता है। नित्य विरह न मिले, तो प्रेम की वृद्धि न हो और नित्य मिलन न हो, तो प्रेम संजीव न हो। वे अपने दिये हुए प्रेम को सजीव भी कर देते हैं और उत्त-रोत्तर बढ़ाते भी रहते हैं। यह उनकी महिमा है।

आप जानते हैं, यह महिमा कब अनुभव में आती है, कब भासित होती है ? जब मानव अधीर होकर, अपने बल से निराश होकर केवल यह सोचता है कि कोई अपना होता और मुझे अपना कर मेरे ताप को हर लेता, मेरी व्यथा को हर लेता, अभाव को हर लेता, इस नीरसता को हर लेता, इस भय को हर लेता, मुझे अभय कर देता, मुझे सरस कर देता, मुझे अपना लेता ! यह आवश्यकता मात्र जब जगती है, तब वे देखते हैं कि अब तो इसने अपनी वास्तविक आवश्यकता को सोचा है, समझा है, अपनी आवश्यकता अनुभव की है, तब उनकी अनुपम लीला ऐसी विचित्र होती है कि देखते ही बनता है।

हम आपको क्या बताएँ, वे देखते हैं कि इस मनुष्य का कौन सा संकल्प ऐसा है जिसकी अपूर्ति से यह पीड़ित है, उस संकल्प को अनायास ही वे पूरा कर देते हैं। जब वे यह देखते हैं कि संकल्पपूर्ति के सुख में यह मेरे महत्व को भूलने लगा है, तब वे करुणित होकर संकल्प-अपूर्ति की परिस्थिति बना कर निः संकल्प होने की प्रेरणा देते हैं, सामर्थ्य देते हैं। अन्त में निः संकल्प भी कर देते हैं। जब वे यह देखते हैं यह कि

निःसंकल्पता की शान्ति के आनन्द में विभोर हो गया और मुझे भूलने लगा है, यह अपने आप ही अपनी महिमा गाने लगा है, अपने आप में ही अपने को पाने लगा है। तब वे बड़ी भारी करुणा करके मुक्ति के आनन्द को भी, निःसंकल्पता के आनन्द को भी फीका-फीका कर देते हैं।

मैं सच कहता हूं कि वे ऐसी लीला करने लगते हैं कि मनुष्य सोचने लगता है कि अरे, अभी तो कुछ मिला ही नहीं। फिर जब उनका शरणागत हो अधीर होता है, तब वे इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव करा देते हैं कि भैया, तेरे किए कुछ हुआ तो नहीं। यार। तू वैसे ही सोच बैठा कि मैं योग्य लेखक हो गया, मैं वक्ता हो गया, मुझे गुरुपद मिल गया, मुझे तत्व-ज्ञान हो गया। तू अनेक छोटी-छोटी बातों में मेरे यार, मुझे क्यों भूल गया? अरे भैया! मैंने तो तेरा निर्माण इसलिए किया था कि तू मुझे सदैव अपना मानता रहेगा और मैं तुझे अपना समझता रहूंगा।

थोड़ी सी शान्ति के रस में, थोड़े से निजानन्द को पाकर क्या मुझे भूल गया? अरे भैया! तू मुझे भूल सकता है, पर मैं तुझे नहीं भूल सकता। मैं सच कहता हूं कि यदि उन्हें हमारी याद न आई होती, तो हमें कभी उनकी याद नहीं आती। उन्हें हमारी याद आती है, क्यों कि वे हमें अपना मानते हैं और जानते हैं। तभी हम उनसे यह कह-पाते हैं कि मैं तेरा हूं और तू मेरा है। आप सच मानिए, मानव का निर्माण इसी उद्देश्य के लिए था, मानव-जीवन इसीलिए मिला।

उन्होंने मानव पर कभी शासन नहीं किया। भला बताओ, क्या इन्द्र शासन के लिए कम है ? सुख-भोग के लिए अन्य प्राणी क्या कम हैं ? मानव का निर्माण उन्होंने न तो शासन करने के लिए किया और न भोग कराने के लिए किया। उन्होंने कहा कि तू स्वाधीन होकर, अमर होकर, अजर होकर, अविनाशी होकर एक बार कह दे कि हे प्यारे ! तुम मेरे हो। इसी उद्देश्य के लिए उस अनन्त ने मानव का निर्माण किया है।

आप कितने भाग्यशील हैं कि आपको मानव जीवन मिला है ! आप मानव होने के नाते उन्हें अपना कह सकते हैं, उन्हें अपना मान सकते हैं, उनके होकर रह सकते हैं, उनके प्रेम की भूख जगा सकते हैं और बढ़ा सकते हैं, उनकी महिमा गा सकते हैं, गवा सकते हैं, उनका चिन्तन कर सकते हैं, करा सकते हैं। इसलिए महानुभाव ! मानव और अनन्त का सदा से ही नित्य सम्बन्ध है, जातीय सम्बन्ध है और आत्मीय एकता है। हम इस महा मन्त्र को कभी न भूलें। किस महा मन्त्र को ? मैं सदैव तेरा हूं, तेरी जाति का हूं, मेरा-तेरा नित्य सम्बन्ध है, तू ही मेरा अपना है। इस महा मन्त्र को हम कभी न भूलें। वे हमें कभी नहीं भूलते। वे बार-बार मानव को यही समझाते रहते हैं कि मैं तुझे प्यारा लगता रहूं, तू मेरा होकर रह। मेरी नजर में तू ही तू और तेरी नजर में मैं ही मैं बना रहूं।

आप सच मानिए, यह मानव जीवन भोग योनि नहीं है। यह जीवन प्रेम योनि है। इस जीवन में ही मनुष्य को

प्रेम की प्राप्ति होती है। और किसी जीवन में प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। तो क्या आज हम उनके प्रेम की आवश्यकता अनुभव नहीं कर सकते, उनकी आत्मीयता को नहीं अपना सकते? अवश्य अपना सकते हैं और उनके प्रेम की आवश्यकता अनुभव कर सकते हैं। यह सामर्थ्य उनकी ही दी हुई है, हमारी उपार्जित नहीं है। सच पूछिए तो दार्शनिकों को दर्शन उन्हीं ने दिया है, कलाकारों को कला उन्हीं ने दी है, लेखकों को लिखने की शक्ति उन्हींने दी है। बुद्धिमानों में बुद्धि का चमत्कार उन्हीं का दिया हुआ है, बलवानों में बल उन्होंने ही दिया है, सत्तावालों में सत्ता उन्हीं की दी हुई है।

प्रेमियों में प्रेम वे ही हैं, ज्ञानियों में ज्ञान वे ही हैं, योगियों में योग वे ही हैं। सब कुछ वे ही हैं, और कुछ है नहीं। कोई और है नहीं, हो सकता नहीं, कभी होगा नहीं। वे ही वे हैं, वे ही वे हैं। तब उनका प्यारा कह उठता है कि तुम ही तुम हो, सब कुछ तू है, सब कुछ तेरा है, न मैं हूँ, न मेरा है; केवल तू है और तेरा है। यह प्रेमियों का सहज स्वभाव है। यह स्वभाव भी प्रेमियों को उन्हीं का दिया हुआ है। यह मानव के पुरुषार्थ से सिद्ध नहीं हुआ। पुरुषार्थियों में पुरुषार्थ करने की जो सामर्थ्य है, वह भी उन्हीं की दी हुई है।

वे स्वयं सामर्थ्यरूप हैं, वे ही विवेकरूप हैं और वे ही सत्तारूप हैं। सब कुछ उन्हीं का है और सब कुछ वे ही हैं। अतः हम सबको उनकी आत्मीयता चाहिए। हमारे और उनके बीच में आत्मीय सम्बन्ध है, जातीय सम्बन्ध तो है ही, नित्य सम्बन्ध तो है ही। हम सदैव उनको अपना मानते रहें और

अपना जानते रहें। इससे भी अधिक ऐसा लगे कि वे ही अपने हैं, वे ही अपने हैं और कोई अपना नहीं है। तू मेरा है और मैं तेरा हूं—यही सम्बन्ध अविनाशी है, अमर है। जब मैं शरीर बनता हूं, तब प्यारे! तुम विश्वरूप धारण करते हो, जब मैं अहं बनता हूं, तब तुम परम तत्व बन जाते हो और जब मैं शरणागत हो जाता हूं, तब तुम सर्वस्व हो जाते हो।

तुम्हारी सदा ही जय हो! जय हो!! तुम्हारी शरणागति सभी को सम्भव हो, इसी सद्भावना के साथ ॥ ॐ ॥



३६

(ब)

प्रवचन :

उपस्थित महानुभाव !

हम प्रभु विश्वासी लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान् हैं और हमारे अपने हैं। हम उस अजन्मा का जन्म मनाते हैं। आप कहेंगे कि अजन्मा का जन्म कैसे मनाया जाता है? किसी को अपना बनाना हो, तो क्या उपाय करना पड़ेगा? किसी को वात्सल्य रस लेना हो, किसी को सख्य रस लेना हो, किसी को मधुर रस लेना हो, तो वह क्या करेगा? वह सबसे पहले यह सोचेगा कि मेरे प्रेमास्पद में कुछ बातें मेरी जैसी होनी चाहिए। जब वह मानता है कि मेरा जन्म हुआ है, तो वह कहता है कि अजन्मा का जन्म मनाऊंगा। क्यों मनाऊंगा? अजन्मा का जन्म तो हो ही नहीं सकता और अजन्मा का जन्म मेरा जैसा तो हो नहीं सकता। अजन्मा की तो अभिव्यक्ति होती है। कब होती है? जब विवेकवती बुद्धि उसमें सम हो जाए, जो सब में है और जिसमें सब है।

देखिए, परमात्मा उसे नहीं कहा जा सकता, जो सभी में न हो और जिसमें सब न हो। संकेत में परमात्मा की यह बड़ी सुन्दर परिभाषा है। वैसे तो सत्य की परिभाषा हो ही

नहीं सकती, क्योंकि उसके लिए कोई उपमा सम्भव ही नहीं है। अनुपम के लिए उपमा कहाँ से आ जाएगी और अद्वितीय के लिए उदाहरण कहाँ से आएगा ? उस जैसा कोई और हो, तब न उदाहरण हो ? तो वह जो अद्वितीय परमात्मा है, वह सदैव है, सभी का है और सभी में है। यह तो मानना ही पड़ेगा। क्योंकि जो सदैव नहीं है, वह परमात्मा नहीं हो सकता; ज़ो सभी का नहीं है, वह परमात्मा नहीं हो सकता और जो सभी में नहीं है, वह भी परमात्मा नहीं हो सकता। जो अद्वितीय नहीं है, वह भी परमात्मा नहीं हो सकता।

ऐसा जो परमात्मा है, वह सभी में होने से अपने में भी है, सदैव होने से अभी भी है, सभी का होने से अपना भी है। अब आप विचार कीजिए कि जो अपना हो, जो अपने में हो और अभी भी हो, उसकी प्राप्ति किसी श्रम-साध्य उपाय से नहीं होती। कैसे होती है ? जब उसमें आस्था की जाए और हम श्रम-रहित हो जाएं। आस्था का अर्थ होता है कि हम उसे स्वीकार करें। श्रम-रहित क्यों हो जाएं ? भाई, जब हमने उसको स्वीकार कर लिया, जो सभी में है, जो सदैव है, जो सर्वत्र है; तो फिर श्रम की अपेक्षा क्यों रह गई ?

जब मानव श्रम-रहित होता है, तब उसकी बुद्धि उसमें स्थित हो जाती है, जिसमें सब है। ऐसा नियम ही है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी देख लीजिए कि जब हम यह मान लेते हैं कि जो सभी में है, तो यह सभी का अनुभव-सिद्ध सत्य है कि बुद्धि के सम होने पर दुखों की निवृत्ति तो होती ही है, रस की अभिव्यक्ति भी होती है।

इसी प्रकार यदि यह मान लिया जाए कि जो सब में वास करता है, जिसमें सब वास करते हैं, वह है वासुदेव। विवेकवती बुद्धि की समता में आनन्दघन भगवान् श्री कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ। कहाँ हुआ ? कारागार में हुआ। उस समय जो पहरेदार थे, वे सब सो गए और ताले लगे थे, वे सब टूट गए। ऐसा हमने कथाकारों से सुना है। पहरेदार सब सो गए का क्या मतलब है ? इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि सब अविषय हो गए।

अब बिना इन्द्रियों के, बिना बुद्धि के कौन बताए कि कारागार में कैद जो वसुदेव थे, वे कहां गए ? देवकी तो वहीं रहीं, वे तो कारागार से बाहर नहीं निकलीं। वासुदेव जी चले उस अपने आनन्दघन श्रीकृष्ण को गोद में लेकर। जब वे चले, तो ताले सब खुले हुए थे, पहरेदार सब सोये हुए थे। कोई वहाँ था ही नहीं, जो यह पूछता कि कहाँ लिए जा रहे हो। उन्होंने श्रीकृष्ण को गोकुल में जाकर स्नेह निर्मित यशोदा जी की गोद में लिटा दिया। उसके बदले में क्या ले आए वे ? इस कथानक को आप जानते ही हैं कि यशोदाजी के लड़की हुई थी। जहाँ स्नेह होता है, जहाँ आनन्द होता है, वहाँ शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। तो उन्होंने शक्ति को उठा लिया और आनन्दघन श्रीकृष्ण को सुला दिया।

अब यहाँ विचार करने की बात है कि वसुदेव-देवकी से आनन्दघन श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव तो हो सकता है, किन्तु पोषण नहीं हो सकता। सन्त लोग कहते हैं कि समाधि में बड़ा आनन्द आ रहा था, कि उत्थान हो गया। योग से परम तत्व

की अभिव्यक्ति तो हो सकती है, परन्तु परम तत्व को लाड़ नहीं लड़ाया जा सकता। यह योग में सामर्थ्य नहीं है। यह किसमें सामर्थ्य है ? यह प्रेम में सामर्थ्य है। तो प्रेममयी श्री यशोदा जी की गोद में श्रीकृष्ण का पोषण हुआ।

हमारे यहां की जो प्राचीन लेखनशैली है, उसमें इस बात का वड़ा ध्यान रखा गया है कि कहीं मनुष्य उस अनन्त को छोड़कर किसी अन्य को लाड़ लड़ाने न लग जाए, भूल न जाए कहीं। उसकी बार-बार याद दिलाते रहते हैं। हमारी पुराण-गाथाएं क्या याद दिलाती हैं ? आनन्दघन श्रीकृष्ण को लेकर वसुदेव चले। यमुना के उस पार हैं नन्द-यशोदा और यमुना के इस पार हैं वसुदेव-देवकी और बीच में हैं यमुना जी। यह यमुना जी जो हैं, वह प्रेम से निर्मित जल है। प्रेम को स्थूल बना दिया जाए, तो उसका नाम यमुना हो जाता है। जैसे ब्रह्म के द्रवीभूत जल को श्री गंगाजी मानते हैं हम हिन्दू लोग, वैसे ही यमुना जी को मानते हैं, प्रेम से निर्मित जल।

जब वसुदेव जी नन्हें-से बालक को लेकर चले, तो यमुना जी ने कहा कि अरे ! यह तो मेरा प्राण-वल्लभ जा रहा है। मैं अगर वसुदेव जी को डुबा दूंगी, तो बड़ा कलंक हो जाएगा। तो वे थोड़ी-थोड़ी घटती गईं। पर प्रेम-निर्मित श्री यमुना जी अपने प्रेमास्पद को स्पर्श करना चाहती हैं, तो थोड़ा-थोड़ा बढ़ती भी हैं कि किसी तरह श्रीकृष्ण के अंग का स्पर्श हो जाए। इससे क्या सिद्ध हुआ ? कहीं पाठक यह बात न भूल जाएं कि वह जो प्रकट हुआ था, वह अनन्त नहीं था, अखण्ड नहीं था, सभी का अपना नहीं था। यह न भूल जाएं,

इसीलिए बीच में याद दिला दी। लेकिन उस अनन्त को कौन स्पर्श कर सकता है ? सबसे पहले वही स्पर्श कर सकता है कि जिसमें वात्सल्य-स्नेह हो। जिसमें वात्सल्य-स्नेह हो, वही ब्रह्म को स्पर्श कर सकता है।

महाराजा राम के जन्म में यह बताया जाता है कि चक्रवर्ती महाराजा भी उस सुख से वंचित थे, जो सुख श्री कौशिल्या जी को मिला। पहले नन्द को सुख नहीं मिला। पहले स्नेह निर्मित श्री यशोदा जी को उस अनन्त को अपनी गोद में देखने का, खिलाने का, वात्सल्य रस देने का अवसर मिला, उसके बाद नन्द को मिला और उसके बाद ब्रजवासियों को मिला। यह है क्या ? यह प्रेम की श्रेणियां हैं। भक्ति-रस में दास भाव, सख्य भाव, वात्सल्य भाव और मधुर भाव की बात कही जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में दास्य भाव की चर्चा तो है ही नहीं।

श्रीकृष्ण अपना मित्र तो बनाना जानते हैं, इससे छोटा बनाना नहीं जानते। क्यों ? जिसमें जितना अधिक ऐश्वर्य होता है, उसमें उतना ही अधिक माधुर्य होता है और उसमें उतना ही अधिक सौन्दर्य होता है। तो श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्य की कोई सीमा नहीं है। इसलिए श्रीकृष्ण यह सहन नहीं कर सकते कि कोई ऐसा भी है, जिसे मैं अपना दास कहूँ। या तो उन्हें अपना सखा दिखाई देता है, या अपनी मैया दिखाई देती हैं, या अपना बाप दिखाई देता है, या अपनी प्रिया दिखाई देती है। तीन ही रसों की चर्चा भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में आती हैं।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि आज उसका जन्म दिन है। भाई, कभी द्वापर में हुआ, अब क्यों मनाते हो? भगवान् का प्रादुर्भाव सदैव हो सकता है। परन्तु कब? जब वसुदेव-देवकी हों तब, नन्द-यशोदा हों तब, ब्रजवासी हों तब, ब्रज गोपी हों तब, उसी स्नेह से निर्मित ब्रज भूमि हो तब, उसी स्नेह से निर्मित श्री यमुना जी हों तब, गऊ और ग्वाल-बाल हों तब। क्योंकि स्नेह निर्मित भूमि में ही श्रीकृष्ण का चरित्र दिखाई देता है, उनका प्रादुर्भाव होता है। स्नेह के बिना श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव नहीं होता।

भाई, हम उस अजन्मा का जन्म क्यों मनाते हैं? आप देखिए, कि जब मनुष्य किसी के साथ प्रेम करता है, तो वह पहले अपना सुख बांट देता है। अथवा यों कहो कि अपने स्तर पर लाकर उसे रख लेता है। हम जन्म-मृत्यु के जाल में फंसे हुए मानव उस अजन्मा का भी आज जन्म मनाते हैं। आप जानते हैं कि बुद्धि को सम करने के लिए व्रत अपेक्षित होता है, उपवास अपेक्षित होता है। उपवास का असली अर्थ क्या है? इन्द्रियां विषय से रहित हो जाएं, मन विषय से रहित हो जाए। भोजन क्या है? इन्द्रियों का विषय इन्द्रियों का भोजन है, मन का विषय मन का भोजन है, बुद्धि का विषय बुद्धि का भोजन है। बोले, आज तो उपवास है, आज भोजन नहीं करेंगे। क्यों? इन्द्रियां हमारी अविषय हो जाएंगीं, मन अविषय हो जाएगा, बुद्धि अविषय हो जाएगी।

तब क्या होगा? जब इन्द्रियां अविषय हो जाएंगीं, तब मन निर्विकल्प होगा और बुद्धि सम हो जाएगी और फिर आनन्दघन श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हो जाएगा। इसलिए उपवास करते

हैं। क्या आपने सोचा कि श्रीकृष्ण का जन्म कब होता है ? रात्रि में होता है, अंधेरे में होता है। अरे बाबा ! अज्ञान के अन्धकार में ही ज्ञान का प्रकाश होता है, ज्ञान के प्रकाश में प्रकाश नहीं होता। तो इधर श्री वसुदेव उस शक्ति को लेकर कारागार में पहुँच गए। उधर अहंभाव रूपी कंस ने पता लगाया, तो मालूम हुआ कि लड़की हुई है। उसने कहा कि लड़की को मार डाला जाए। उसने उस लड़की को पत्थर पर पटका। पर अहं शक्ति को नाश थोड़े ही कर पाता है। अहं शक्ति का नाश नहीं कर सकता। तो उस शक्ति ने कहा कि अरे ! तू मुझे क्या मारता है ? तेरा मारने वाला तो ब्रज में पैदा हो गया है। यानी तेरे अहंरूपी अणु को मारने वाला महान ऐश्वर्यवान का प्रादुर्भाव होगया है।

ऐश्वर्य की पहचान क्या है ? जिसको बाह्य तैयारी न करनी पड़े, तो समझलो कि उसके बराबर कोई ऐश्वर्यवान नहीं है। श्रीकृष्ण के चरित्र में आप देखेंगे कि बाह्य तैयारी की गन्ध भी नहीं है, चाहे वे दुष्टों का संहार करते हों और चाहे भक्तों की भक्ति-रस का आस्वादन करते हों। श्रीकृष्ण किसी तैयारी के साथ कोई लीला नहीं करते। वे कभी वन में, कभी कुंज में और कभी बिल्कुल साधारण-से-साधारण परिस्थिति में लीला करते हैं। अनन्त ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्य का प्रादुर्भाव श्रीकृष्ण के चरित्र में दिखाई देता है।

इधर गोकुल में बहुत धूमधाम के साथ नन्दोत्सव होने लगा। उधर कंस भयभीत होकर अपनी सेना को बुला कर कहने लगा कि भाई देखो, ब्रज में जितने भी बच्चे हैं, उन

सबको समाप्त कर दो। उसका राक्षसी स्वभाव तो था ही। इधर खूब नन्दोत्सव हो रहा है, न दिन का पता और न रात का पता। जैसा कि वर्णन है कि सारी सृष्टि लालायित हो रही है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकर्ता शिव शंकर उस अपने अलौकिक, अद्वितीय, दिव्य स्वरूप का दर्शन करने आ रहे हैं। सारे ब्रजवासी बड़ी धूमधाम से उत्सव मना रहे हैं।

यह बिल्कुल अध्यात्मिक बात है कि तप के बिना जो उत्सव मनाया जाता है, वह अधूरा उत्सव होता है। उत्सव के लिए पहले तप होना चाहिए, फिर उत्साह होना चाहिए। जब उत्साह होता है, तब उत्सव होता है। आप देखेंगे कि जब उत्साह की वृद्धि होती है, तब रस की अभिव्यक्ति होती है। तो सारे गोकुल-वासी ब्रजवासी खूब तन्मय और विभोर हो रहे हैं, आनन्द में डूब रहे हैं। आप जानते हैं, चाहे हम कुछ भी हों, किसी भी स्थिति में हों, जब किसी से हम सुख लेने लगते हैं, तब थकान आती है।

जब ब्रजवासी थके, यशोदा-नन्दबाबा थके, तो यशोदा जी ने अपने प्राण प्यारे, प्राण जीवन, प्राणाधार लाला को बड़े सुन्दर पालना में सुला किया। उधर कंस की अनुयायी कहो, आज्ञाकारिणी कहो, पूतना जी ने वड़ा सुन्दर धाय का भेष बनाया। आप जानते ही हैं कि सन्तलोग, साधु लोग और प्रेमी जन जो होते हैं, वे भीतर-बाहर एकसे होते हैं। वे बड़े भोले होते हैं। जिसमें जितनी चतुराई-चालाकी होती है, उतना ही वह प्रेम के राज्य से दूर रहता है और जिसमें

जितना भोलापन होता है, उतना ही वह प्रेम के रामाज्य में प्रवेश पाता है।

भोलीभाली श्री यशोदा जी गृह कार्य में लगी हुई थीं। वे अपने प्रिय लाला की सुख-सामग्री की तैयारी में लगी थीं, उसका ही संयोजन कर रही थीं। उधर ऊपर से बड़ा सुन्दर वेश बना कर, धाय का भेष बना कर पूतना जी पधारीं और कहने लगीं कि हाय! हाय!! यशोदा, तू ऐसी निठुर हो गई है कि श्याम सलौने मधुर लाला को पालने में झुला कर गृह कार्य में लगी है? अरी भटू, अगर तू कहे तो मैं तेरे लाला को खिलाऊं? प्रेमियों में कोई भेद-भाव होता नहीं। तो यशोदा जी ने कहा कि जैसा मेरा लाला वसा तेरा लाला, खिलाओ।

तो पूतना ने धाय माँ बनकर श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया। श्रीकृष्ण ने मन में कहा कि अच्छा, तू मुझ अविनाशी को मारना चाहती है? मुझ अविनाशी को तू क्या मार सकती है? लेकिन क्या करूं, तू ने माँ का भेष बनाया है। देखो, उनकी कृपालुता का कोई वारापार नहीं है। पूतना का कपटी वेश है, दम्भ है, कठोर हृदय है। किंतु प्रभु कितने उदार हैं, कितने महान् हैं कि हाय! हाय!! इसने मुझे लाला कह दिया। महाराज! उसने विष से भरा जो स्तन था, उसका पान कराया। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अरी मैया, तूने मुझे लाला कह दिया, तो अब तुझे छोड़ तो सकता नहीं। क्या तू मुझ अविनाशी को मारना चाहती है? तो श्रीकृष्ण ने दूध क्या पिया, पूतना के प्राणों को भी पी लिया।

जब प्राणों पर आकर पड़ती है, तब कपट खुल जाता है। तो कपट का भेष छोड़कर वह पिशाचिनी रूप में श्रीकृष्ण को लेकर उड़ी। पर उस अनन्त को कैसे ले जाऐ? जब श्री श्याम सुन्दर का स्पर्श हो गया, तो पूतना नीचे धड़ाम से गिर-पड़ी। उधर प्रेमीजनों का मन जो थोड़ी देर के लिए हट गया था, उन्होंने देखा कि लाला वहां नहीं है। तो कहने लगे कि हाय! हाय!! लाला को कौन ले गया? फिर उन्होंने देखा कि लाला मुस्कराता हुआ उस मृतक पूतना की छाती पर लेटा हुआ है। श्रीकृष्ण ने पूतना से कहा कि तूने झूठे ही मुझे लाला कहा, पर फिर भी मैया यशोदा की भांति तुझे गोलोक भेजता हूं। तू मुझे मारना चाहती थी, इसलिए मैं तेरे प्राण पिये लेता हूं। न्याय, महान करुणा और कृपालुता भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में स्पष्ट है। कोई भी बलपूर्वक भगवान् को मारना चाहे या प्राप्त करना चाहे, सो नहीं कर सकता। लेकिन यदि कोई भगवान् से आत्मीय सम्बन्ध जोड़ लेता है, तो उसे भगवान् अवश्य अपना लेते हैं।

भगवान् के चरित्र में बड़ी विलक्षणता होती है। एक ओर दिखाई देता है कि वे दुष्टों का संहार कर रहे हैं और दूसरी ओर दिखाई देता है कि भक्तों की भक्ति का पोषण कर रहे हैं। सारे ब्रजवासियों का मन श्रीकृष्ण में लगा हुआ है। इस प्रकार ब्रज में भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों को देखा जाए, तो उनमें सिवाय प्रेम के और कुछ देखने को नहीं मिलता। सिवाय प्रभु की कृपालुता के और किसी तत्व का दर्शन होता ही नहीं।

इसलिए मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि भगवान् का जो चरित्र है, वह बहुत बड़ा दर्शन है, बहुत बड़ा विज्ञान है और बहुत बड़ा ललित साहित्य है। कोई रस ऐसा नहीं है, जो भगवत्-चरित्र में न हो। उस में सभी रसों का प्रादुर्भाव है। आपने सुना ही होगा कि भगवान् श्रीकृष्ण के तीन प्रकार के चरित्र हैं– कुछ ब्रज के चरित्र, कुछ वन के चरित्र और कुछ निकुंज के चरित्र। यह जो जन्मोत्सव है, यह ब्रज का चरित्र है। आप जानते है, जहां जन्म होता है, वहां छठी भी होती है। वहाँ क्या नहीं होता ? वहाँ सभी उत्सव होते हैं। इस प्रकार ब्रजवासियों के यहाँ श्रीकृष्ण के नित-नव उत्सव होते रहते हैं और श्रीकृष्ण अपने प्रेम का दान और पान करते रहते हैं। वे अपने माधुर्य, सौन्दर्य और ऐश्वर्य का बोध भी कराते रहते हैं।

ऐश्वर्य का अर्थ क्या है ? जिस पर कोई विजयी न हो सके। माधुर्य का अर्थ क्या है ? जो सभी को अपना सके। सौन्दर्य का अर्थ क्या है ? जो सभी को खींच सके, सर्व प्रिय हो जाए। सबके मन जिसमें विलीन हो जाएं, उसको कहते हैं सौन्दर्य। जो सभी को अपना ले, पतित-से-पतित को भी, असमर्थ-से असमर्थ को भी, कैसा ही क्यों न हो। सभी को अपनाले, उसी को कहते हैं माधुर्य। जिस पर कोई विजयी न हो सके, उसको कहते हैं ऐश्वर्य।

उसी अनन्त ने मानव का निर्माण अपने में-से ही किया है। आप कहेंगे कि जब अनन्त ने मानव को अपने-में से ही बनाया है, तो मानव में भी ऐश्वर्य, माधुर्य, और सौन्दर्य होना चाहिए। निस्संदेह मानव में भी ऐश्वर्य माधुर्य और सौन्दर्य

है। क्या ऐश्वर्य है मानव में ? मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप सोचिए, जिसे कुछ नहीं चाहिए, इसका अर्थ क्या हुआ ? न भोग चाहिए, न योग चाहिए और न मोक्ष चाहिए। जिसे कुछ नहीं चाहिए, उस पर कौन विजयी हो सकता है ? उस पर कोई विजयी नहीं हो सकता। तो निष्कामता का ऐश्वर्य मानव का अपना ऐश्वर्य है। ऐसे ही निर्विकारता का सौन्दर्य मानव का अपना सौन्दर्य है। आप ही बताओ कि निर्लोभता, निर्मोहता, निरभिमानता की और किसका चित्त आकर्षित नहीं होता ? निरभिमानी किसको प्यारा नहीं लगता ? निर्मोही, निष्कामी किसको प्यारा नहीं लगता ?

निर्ममता से प्राप्त जो निर्विकारता है, यह मानव का सौन्दर्य है, निष्कामता से अपने आप में सन्तुष्ट होना मानव का ऐश्वर्य है। आत्मीयता यानी अपनेपन से प्राप्त जो अगाघ प्रियता है, यह मानव का माधुर्य है। जैसे उस अनन्त में यह ऐश्वर्य है कि उस पर कोई विजयी नहीं हो सकता, उस अनन्त में यह माधुर्य है कि वह सभी को अपना सकता है और उस अनन्त में यह सौन्दर्य है कि वह सभी के चित्त को अपनी ओर खींच सकता है; वैसे ही मानव में भी निष्कामता का ऐश्वर्य है, निर्विकारता का सौन्दर्य है और आत्मीयता से जागृत अगाघ प्रियता, अखण्ड स्मृति का माधुर्य है। इन बातों को ठीक-ठीक समझाने के लिए भगवान् के चरित्र का प्रादुर्भाव हुआ। बुद्धिवादी लोग कहेंगे कि उस निर्विशेष ब्रह्म को और उसके चरित्र को समझाने के लिए पुराण गाथाएं लिखी गईं।

देखिए, यह मानव सेवा संघ कोई साम्प्रदायिक संघ नहीं है और न किसी का आग्रह है, किन्तु सत्य का विवेचन है। सत्य क्या है ? तो हर भाई को, हर बहिन को ऐश्वर्य चाहिए, माधुर्य चाहिए, सौन्दर्य चाहिए। ऐसा कोई भाई नहीं है, ऐसी कोई बहिन नहीं है कि जो यह चाहे कि मैं पराजित हो जाऊँ या जो यह चाहे कि मेरी ओर आकर्षण न रहे। और यह भी कोई नहीं चाहता कि मैं सर्व प्रिय न हो जाउं। ऐसा कोई नहीं है। मतलब क्या ? उसी अनन्त ऐश्वर्य की, उसी अनन्त माधुर्य की और उसी अनन्त सौन्दर्य की मांग मानव मात्र की अपनी मांग है। इसी मांग के आधार पर मानव प्रभु का अपना है, प्रभु का निज है। प्रभु को वह कितना प्यारा है और उसे प्रभु कितने प्यारे हैं, इसका कोई वारापार नहीं है।

महानुभाव ! क्या हम आज निर्ममता का सौन्दर्य, निष्कामता का ऐश्वर्य और आत्मीयता का माधुर्य प्राप्त कर छिपे हुए को प्रकट करने के लिए राजी हैं ? यदि राजी हैं, तो मैया यशोदा की भांति कहना पड़ेगा कि श्रीकृष्ण मेरा अपना लाला हैं। आप जानते है, वात्सल्य रस में कितना माधुर्य होता है, कितना स्नेह होता हैं ! मां बच्चे को सतत सुख देना चाहती है, उससे कभी भी कुछ भी लेना नहीं चाहती। यही तो वात्सल्य रस है। मैया यशोदा जी श्रीकृष्ण को सुख देना चाहती हैं, कभी कुछ लेना नहीं चाहतीं। सुनते हैं कि जब लाला कुछ बड़ा हो गया, चलने-फिरने लगा, तो सभी ब्रजवासियों के मन में यह भाव आया कि कितना अच्छा होता कि श्रीकृष्ण हमारे घर में आते, दूध-दही-माखन खाते, लुटाने, फैलाते। भगवान् कहते ही उसे हैं, जो सभी का हो।

जैसे नन्दरानी यशोदा जी को वात्सल्य-स्नेह रस की मूर्तिमान माना जाता है, वैसे ही माधुर्य रस की मूर्तिमान श्रीराधारानी हैं और सख्य रस के मूर्तिमान श्रीदामा आदि हैं। आप जानते हैं कि प्रेमियों के जीवन में एक बड़ी विलक्षणता होती है और वह यह होती है कि उनको अपने प्रेमास्पद की निरन्तर प्रतीक्षा रहती है, अखण्ड प्रतीक्षा रहती है और अगाध प्रियता भी रहती है। अखण्ड प्रतीक्षा करने वाली ब्रज गोपियों के घर में श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ घुस जाते हैं और उनका दूध-दही-मक्खन खाते लुटाते, मोर-बन्दरों को खिलाते और फैलाते हैं। पर किनके घर में? उनके घर में जो रात और दिन उनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। किसलिए? श्रीकृष्ण हमारे लाला बन कर हमारा माखन खाएं, हमारा दही खाएं।

जब लाला की स्मृति सबल होती, तो वे क्या करतीं, कैसे यशोदा जी के घर जातीं? किसी के घर जाते हैं, तो किसी बहाने से जाते हैं, किसी काम से जाते हैं। तो वात्सल्य भाव की गोपियाँ यशोदा को उलाहिना देने आती हैं। अब देखिए, भगवान् के प्रेमियों के चरित्र में ऊपर से उलाहिना देने आई हैं और भीतर इसी बहाने से गोपाल को देखने आई हैं। वे बिगड़ कर कहती हैं कि हे नन्दरानी! अब हम तुम्हारे गांव में नहीं रहेंगीं। क्यों भटु, क्या बात हो गई है, क्यों इस गाँव में नहीं रहोगी? तो बोलीं, बात क्या है जी, तुम्हारा ढोटा बड़ा ढीठ है। अब देखो, ऊपर से कहती हैं कि तुम्हारा ढोठा बड़ा ढीठ है और भीतर से सोचती हैं कि हमारा ढोटा बड़ा विचित्र है। प्रेम की दशा बड़ी अटपटी होती है।

भीतर से कुछ दशा होती है और ऊपर से कुछ कहती हैं। तो बोलीं कि हम तुम्हारे गांव में नहीं रहेंगीं। तुम्हारा ढोटा बड़ा नटखट है। अरे यशोदा जी, वह माखन खाय तो खाय, इसमें कोई बात नहीं है। जैसा तुम्हारा लाला वैसा हमारा लाला।

अब देखिए, दो तरह का चिन्तन होता है। विरोध मान कर भी चिन्तन होता है और अनुकूल मान कर भी चिन्तन होता है। एक हमारे मित्र हैं, वे विरोध मान कर चिन्तन करते हैं। वे बुराई भी करते जाते हैं और चिपटते भी जाते हैं। ऐसे ही गोपियाँ उधर उलाहिना भी देती जा रही हैं और इधर श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित भी होती जा रही हैं। वे कहती हैं, तुम्हारा लाला हमारा दूध-दही-माखन खाता है, सो कोई बात नहीं। पर वह तो फैला देता है और मोर-बन्दरों को लुटाता है। तो भोलीभाली यशोदा कहती हैं कि अरी भटू ! तुम दूध-दही-माखन को ऊंचे छींके पर रख दिया करो, मेरा नन्हा-सा लाला है। तो वे बोलीं, हे नन्दरानी ! तेरा लाला बड़ा ढीठ है। नन्हा-सा तो है, पर बड़ा ढीठ है। क्या ढीठ है ? बोलीं, जब हम छींके पर रख देती हैं, तो सखाओं के कन्धे चढ़ कर लकुट से तोड़ देता है।

यशोदा जी बोलीं कि तुम अंधेरे में राम कुठरिया में छिपा कर रख दिया करो। तो वे बोलीं कि जब हम छिपा कर रखती हैं, तो तेरे लाला के मुख पर इतना प्रकाश है कि अंधेरा नहीं रहता। अब तो यशोदा जी बड़े संकट में पड़ गईं। फिर वे बोलीं कि अरी भटू ! तुम गाँव छोड़ कर मत जाओ। अगर लाला ने एक मटकी तोड़ी है, तो एक-एक

की नौ-नौ मटकी ले जाओ। गोपियाँ बोलीं, सो तो यह सब गैयां लाला की, यह सब माखन लाला का, यह सब दूध-दही इसी लाला का है। नन्दरानी! कोई चिन्ता मत कर। अब देखिए, कितनी निर्ममता है! यह भक्तों का चरित्र है। इधर यशोदा जी कहती हैं कि एक-एक मटकी की जगह नौ-नौ मटकी ले लो, पर गाँव छोड़ कर मत जाओ। उधर गोपियाँ कहती हैं कि नन्दरानी! अधीर न हों। हम गांव छोड़ कर नहीं जाएंगीं। जैसी तुम्हारा लाला, वैसो हमारो लाला।

इस प्रकार ब्रज में श्रीकृष्ण और उनके प्रेमियों के अनेक चरित्र हैं। जितना कहा जाए, कम है। मैंने श्रीकृष्ण के चरित्र के सम्बन्ध में जो कुछ सुना है, उसका जो तात्पर्य है वह आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूँ कि श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव में सख्य भाव, मधुर भाव परकिया भाव पाए जाते हैं। सच पूछिए तो दो ही बातें हैं, एक ओर तो उनकी कृपालुता और महानता दूसरी ओर प्रेमियों की आत्मीयता का चित्रण। आत्मीयता ही प्रेम की प्रतीक है।

क्या हम-आप उस अजन्मा का जन्मोत्सव मनाते हुए इस बात को स्वीकार करेंगे कि वह अनन्त हम सबकी अपनी ही जाति का है? तभी तो उसको अपना लाला बना सकोगे, तभी उसका सखा बन सकोगे। हमारी और उसकी जातीय एकता है, यह पहली बात है। अद्वैतवादियों को भी यह सत्य मानना पड़ता है। वे जीव-ब्रह्म की जातीय एकता मान कर ही अद्वैत सिद्ध करते हैं। उसके बाद दूसरा नम्बर आता है नित्य सम्बन्ध का। यह योगियों की चीज है। योगियों ने उस अनन्त से नित्य सम्बन्ध स्वीकार किया है और प्रेमियों ने उस

अनन्त से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार किया है, अपनेपन का सम्बन्ध स्वीकार किया है । आत्मीय सम्बन्ध में जातीय सम्बन्ध भी है और नित्य सम्बन्ध भी । जितने भी प्रेमीजन हुए हैं, उन्होंने उस प्रभु को अपना कह कर स्वीकार किया है । इस प्रकार अनन्त के प्रादुर्भाव के अनेक चरित्र हैं, अनेक उदाहरण है ।

एक दिन भक्तिमती देवकी जी ने कहा कि शारीरिक और बौद्धिक विकास के पश्चात् जब मैंने अपनी ओर देखा, तो मुझे एक अभाव दिखाई दिया, एक बड़ा अधूरापन जीवन में दिखाई दिया । हमने पूछा, क्या अधूरापन दिखाई दिया ? तो कहने लगीं कि मुझे सच्चरित्रता के आधार पर सम्मान मिल गया, योग्यता के आधार पर रोटी मिल गयी, पर मेरे हृदय की यह प्यास कि कोई मेरा अपना होता, वह नहीं पूरी हुई । वे कभी-कभी बिगड़ कर झुंझलाती हुई कहतीं कि किसने मेरा निर्माण कर दिया, किसने मुझे बना दिया ? मैंने अपने को अपने आप तो बनाया नहीं । मुझे बनाया, तो राज-कुमार सिद्धार्थ जैसा वैराग्य मुझे क्यों नहीं दे दिया, कबीर जैसा विचार क्यों नहीं दे दिया और मीरा जैसी सरल श्रद्धा और भक्ति क्यों नहीं दे दी ?

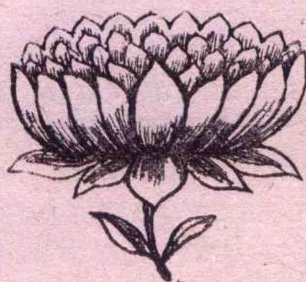
वे बड़ी ईमानदारी से कहतीं थीं । उनका विद्रोही, विरोधी भाव को लेकर चिन्तन था । तो वे कहतीं कि होंगे कोई भगवान्, कहीं बैठे होंगे एक कठोर जज का भेष बनाए । कौन कहता है कि वे कृपालु हैं, जबकि मुझे ऐसा बना दिया ? १९५४ की पहली जनवरी को जब वे मेरे पास आईं, तो मैंने

उनसे कहा कि देखो, तुम जानो या न जानो, मानो या न मानो । पर देवकी जी, कोई एक है ऐसा, जो सभी का अपना है । वह तुम्हारा भी है । पर उनके मस्तिष्क में इतना विद्रोह था कि वे मुंह से भी नहीं कह पाती थीं कि वे भगवान् मेरे हैं, मन से मानने की बात तो दूर। लेकिन उनके हृदय में एक मांग थी ।

मानव सेवा संघ में एक बड़ी सुन्दर बात बताई जाती है कि भाई, जिसको तुम प्राप्त करना चाहते हो, उसकी आवश्यकता अनुभव करो । उसको बलपूर्वक पकड़ने की कोशिश मत करो, केवल आवश्यकता अनुभव करो । देवकी जी कहने लगीं कि मेरे हृदय में मांग थी । पर इतनी सख्त और कट्ट हृदय की थी, इतना मस्तिष्क विद्रोही था कि वाणी से भी कह नहीं पाती थीं और मांग को मिटा भी नहीं पाती थीं । अन्त में उन्होंने कहा कि क्या बताऊं, वे कितने हम सबके अपने हैं कि उन्होंने मेरे करने की बात भी की और अपने करने की बात भी की । मैंने पाया है कि वे परम प्रेमी हैं और जो भाव उनके साथ स्वीकार कर लिया जाता है, उसको वे निभाते हैं । प्रभु विश्वास के सम्बन्ध में, प्रभु महिमा के सम्बन्ध में, उनके चरित्र के सम्बन्ध में जितना कहा जाए, कम है ।

इसलिए महानुभाव ! आज बड़ा शुभ दिन है । आज हम सबको इस बात पर बहुत दृढ़ता के साथ विचार करना चाहिए कि वह परमात्मा, जिसको वेदों में सुना है, सन्तों से सुना है, भक्तों से सुना है, वह मेरी हो जाति का है । मैं उसकी

ही जाति का हूँ । उसका-मेरा नित्य सम्बन्ध है । वह मेरा अपना है । मेरा कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिए । यदि यह महा मन्त्र हम सब अपना सकें, तो निःसन्देह जो रस किसी भी भक्त को, जो रस किसी भी मुक्त को, जो रस किसी भी शान्त को कभी-भी मिला है, वह रस प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहन को मिल सकता है । इसी सद्‌भावना के साथ ॥ॐ॥



३७

(अ)

प्रवचन :

सच बात तो यह है कि बताने के लिए कोई बात ही नहीं है। कारण, कि प्रत्येक साधक में साधन विद्यमान है। पर अपने बनाए हुए असाधन ने उस विद्यमान साधन को ढक दिया है। जिस समय साधन की लालसा जाग्रत होती है, उसी समय अपना बनाया हुआ असाधन हट जाता है। उसके हटते ही साधक और साधन में अभिन्नता हो जाती है। परन्तु हमसे एक बड़ी भूल यह होती है कि हम अपने सम्बन्ध में अथवा दूसरों के सम्बन्ध में भूतकाल के आधार पर निर्णय देकर अपने को अथवा दूसरों को बुरा समझने लगते हैं। यदि सर्वांश में अपने को ही बुरा समझा होता, तो और कोई बुरा नहीं दिखाई देता। पर आज हमारी दशा यह है कि अपने साथ-साथ दूसरों को भी बुरा समझते रहते हैं। आंशिक बुराई के आधार पर यह मान बैठते है कि दूसरे लोग अच्छे नहीं हैं। इसका बड़ा ही भयंकर परिणाम होता है।

जब आप स्वयं ही अपने को और दूसरों को अच्छा

नहीं मानते, तो भला सोचो तो सही, आप अच्छे कैसे हो सकते है ? आप कहेंगे कि अच्छा काम करेंगे, तब हम अच्छे होंगे। अगर हम आपसे पूछें कि क्या बुरे कर्त्ता से अच्छा कर्म बनेगा ? तो आपके पास कोई उत्तर नहीं है कि बनेगा। जरा ध्यान दो, कि पहले कर्म अच्छा होगा, कि पहले कर्त्ता अच्छा होगा ? आपको मानना ही होगा कि पहले कर्त्ता अच्छा होगा। और इसके लिए आपको वर्तमान में ही अपने को निर्दोष स्वीकार करना पड़ेगा। अगर आप अपने को निर्दोष स्वीकार करने को राजी नहीं हैं, तो फिर जीवन में निर्दोषता की अभिव्यक्ति हो, यह सम्भव ही नहीं है ।

आप कहेंगे कि क्या हम अपने में दोषों को देखते हुए भी निर्दोश मानकर अपने को धोखा दें ? यदि हम आप से पूछें कि आप ईमानदारी से बताइए कि आपके जीवन में आपके किये हुए दोषों का प्रभाव है अथवा आप दोषी हैं ? तो आप कहेंगे कि किये हुए दोष का प्रभाव ही दोष है। अगर प्रभाव ही दोष है, तो यह दोष कभी मिट ही नहीं सकता। प्रभाव दोष नहीं होता, प्रभाव तो दोष के द्वारा उत्पन्न हुआ है। तो दोष द्वारा यह प्रभाव उत्पन्न हुआ है। यदि वह दोष न रहे, तो वह प्रभाव भी नहीं रहता।

आज एक मौलिक प्रश्न सामने आता है कि क्या आप अपने को और दूसरों को भला मानने को राजी हैं ? यदि राजी हैं, तो आप भी भले हो सकते हैं और दूसरे भी भले हो सकते हैं। आप कहें कि न तो हम अपने को भला मानने को राजी हैं और न दूसरों को भला मानने को राजी हैं। तब तो सच

मानिये, न आप भले हो सकते हैं और न आपके द्वारा दूसरे भले हो सकते हैं। इसलिए यदि आप सचमुच साधननिष्ठ होना चाहते हैं और साध्य के अगाध अनन्त प्रेम को प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि मानव मात्र का वर्तमान सर्वथा निर्दोष है। वर्तमान क्यों निर्दोष है ? तो हमारे और आपके जीवन में यह मालिक प्रश्न है कि क्या दोषों की स्वतन्त्र सत्ता है ? यदि दोष की स्वतन्त्र सत्ता है, तो उसका नाम दोष ही नहीं। जिसकी स्वतन्त्र सत्ता होती है, उसमें कोई दोष नहीं होता। यदि आप यह कहते हैं कि दोष की उत्पत्ति होती है। तो ऐसी कोई उत्पत्ति बताइए कि जिसका विनाश अपने आप न हो। कोई नहीं बता सकते।

कोई उत्पत्ति ऐसी होती ही नहीं कि जिसका विनाश न हो। तो भाई यदि दोष की उत्पत्ति हुई है, तो उसका विनाश उसी काल से आरम्भ होता है, जिस काल में दोष उत्पन्न होता है। इसलिए भूतकाल के दोष के आधार पर हम और आप दोषी नहीं हो सकते। हाँ, एक बात अवश्य है कि दोष-जनित सुख का जो प्रलोभन है, उस प्रलोभन की भूमि में पुनः दोष की उत्पत्ति होती है।

अतः आज आपको इस बात का निर्णय करना है कि अब हम दोष-जनित सुख का भोग नहीं करेंगे। इतनी सी बात है। अगर आप इस बात के लिए राजी हैं, तो निःसन्देह आप परम निर्दोष है। अगर आप यह सोचते हैं कि दोष-जनित सुख का प्रलोभन तो हम त्याग ही नहीं सकते, उसे तो हम सुरक्षित रखेंगे ही। तब भी आप सर्वांश में दोषी नहीं हो सकते, सभी

के लिए दोषी नहीं हो सकते, सर्वदा के लिए दोषी नहीं हो सकते। तो भाई, अब इन दो बातों में-से आपको एक बात का निर्णय करना है कि क्या आप वह जीवन पसन्द करेंगे, जिसमें दोषों की उत्पत्ति होती रहे अथवा वह जीवन पसन्द करेंगे, जहाँ निर्दोषता की अभिव्यक्ति हो ? इन दोनों में-से किसी एक प्रकार के जीवन को स्वीकार करना ही पड़ेगा। आप विचार करें।

आज हमारी दशा क्या है ? या तो अपने को बुरा समझते हैं या दूसरों को बुरा समझते हैं। जब कोई और बुरा समझने को नहीं मिलता, तो आज का साधक कहता है कि मन बहुत खराब है, बुद्धि ठीक नहीं रही, शरीर ठीक नहीं है, साथी अच्छे नहीं हैं, परिस्थिति अनुकूल नहीं है, गुरु महाराज ने आशीर्वाद नहीं दिया, प्रभु ने कृपा नहीं की आदि-आदि। वाहरे निर्णय ! सबके कर्तव्य का यथेष्ट ज्ञान, सबकी भूल का यथेष्ट ज्ञान; पर हमसे कभी भूल हुई और भूल कर सकते हैं, इस पर कोई चर्चा ही नहीं ? जरा ध्यान तो दीजिए।, हमें दूसरा कब बुरा मालूम होता है ? जब वह हमारे मन की बात पूरी नहीं करता। कृपा सिन्धु ! आप जरा यह तो बताइए कि आपके मन में जो बात उत्पन्न होती है, क्या वह ऐसी होती है, जो बुरी नहीं है ?

अगर आप यह कहते हैं कि हमारे मन में गलत बात उत्पन्न ही नहीं होती। तब तो संसार में कोई ऐसा हो ही नही सकता, जो तुम्हारे मन की बात पूरी न करे। अगर आप यह कहते हैं कि हमारे मन में बुरी बात उत्पन्न होती है तो

मैं कहता हूं कि आपका सबसे बड़ा मित्र वही है, जिसने आपके मन की बात पूरी नहीं की। क्योंकि बुरी बात में सहयोग देना, यह तो आपके लिए हितकर नहीं है। अगर इस तरह से आप सोचें, तो भी आपको यह मानना ही पड़ेगा कि भाई, मन की बात पूरी न होने के आधार पर हम दूसरों को बुरा समझने लगते हैं।

आज का महाजन कहता है कि मजदूर अच्छा नहीं है, मजदूर कहता है कि महाजन अच्छा नहीं है, राष्ट्र कहता है कि प्रजा अच्छी नहीं है, प्रजा कहती है कि राष्ट्र अच्छा नहीं है। ऐसे ही दो बन्धुओं के बीच में है। तो मैं आपसे पूछता हूं कि भाई, आप क्यों गलत होते हैं ? आप तो ठीक बने रहिए। आप कहें कि जब तक दूसरा ठीक नहीं होगा, हम ठीक हो ही नहीं सकते। तो आप सच मानिये, आप कभी ठीक हो ही नहीं सकते। क्यों ? आपने पहले ही पराधीनता स्वीकार कर ली और आपने इस बात को मान लिया कि जब दूसरे लोग ठीक होंगे, तब हम ठीक होंगे। यह मालूम है, क्या है ? यह प्रतिक्रिया है।

यह निर्णय नहीं है, यह वास्तविकता नहीं है कि दूसरे ने हमको हानि पहुंचा दी। जो व्यक्ति, जो समाज, जो देश, जो वर्ग अपने दुख का कारण दूसरों को ही मानता रहेगा, आप सच मानिए, वह कभी विकास नहीं कर सकता। उसका कभी विकास नहीं हो सकता। क्यों ? अगर आपने दूसरे को दुख का कारण मान लिया, तो आप दुख मिटाने में स्वाधीन नहीं रहेंगे। जिस कार्य में आप स्वाधीन नहीं हैं, उस कार्य में सिद्धि हो ही कैसे सकती है ?

इसलिए भाई, बड़ी ठंडी तबियत से धीरज के साथ आपको यह सोचना ही पड़ेगा कि क्या सचमुच हमारे दुख का कारण कोई दूसरा है ? यदि हमारे दुख का कारण कोई दूसरा है, तो बताओ कि वह कौन है ? जब आप अपने अस्तित्व को स्वीकार करेंगे, तब आपके सामने जगत आयेगा अथवा यदि आप प्रभु में श्रद्धा रखते हैं, तो प्रभु आपके सामने आएंगे। आप इन्हीं दो बातों को मानेंगे। अपने से भिन्न या तो जगत को मानेंगे, अथवा प्रभु को मानेंगे। जगत को मानेंगे इन्द्रिय-ज्ञान के आधार पर और प्रभु को मानगे श्रद्धा के आधार पर। किन्तु विचार करो कि जगत किसे कहते हैं ? जो पर-प्रकाश्य हो, जो अपने को अपने आप प्रकाशित न करे, जिसमें सतत परिवर्तन हो और जिसमें अदर्शन हो। जरा ध्यान दीजिए। आप पर-प्रकाश्य नहीं हैं, आप स्वयं अपने को आप प्रकाशित कर रहे हैं। तो जो पर-प्रकाश्य नहीं है, स्वयं प्रकाश है, भला उसे दुख देने में पर-प्रकाश्य जगत क्या समर्थ होगा ? जो जगत क्षणमात्र भी एक स्थिति में नहीं रह सकता, क्या वह जगत उसको दुख देने में समर्थ होगा, जिसमें कभी परिवर्तन हुआ ही नहीं, जो स्वयं-प्रकाश है ?

यह निर्णय कि जगत ने हमें दुख दिया, क्या ईमानदारी है ? ईमानदारी नहीं है। तो फिर क्या है ? जगत की दासता ने जगत के द्वारा दुख देने की बात बताई। अब जरा सोचो कि जगत की दासता स्वीकार किसने की ? तो आपको विवश होकर मानना ही पड़ेगा कि मैंने की। फिर दुख का कारण कौन हुआ ? आप कहेंगे कि मैं हुआ। क्यों हुआ ? क्योंकि मैंने जगत

की दासता स्वीकार की। अच्छा भाई, जब आपको दुख का कारण मालूम होगया कि जगत की दासता स्वीकार करने से मैं दुखी हुआ। तो जगत की दासता का त्याग कर दो, दुख मिट जाएगा। अगर आप कहें कि नहीं, दुख तो मिट ही नहीं सकता। अगर दुख नहीं मिट सकता, तो दुख के कारण का ज्ञान आपको कैसे हो गया ? कैसे आपने निर्णय ले लिया कि अमुक हमको दुख देता है ? यह निर्णय तो ज्ञानपूर्वक होगा भाई।

अगर अमुक वर्ग, अमुक व्यक्ति, अमुक परिस्थिति, अमुक अवस्था हमको दुख देती है, तो इस बात का सही ज्ञान हुए बिना निर्णय दे नहीं सकते। इसमें तब तो आपके ज्ञान का ही विरोध है। अगर हमारे जीवन में-से वस्तुओं की दासता निकल जाए, तो हमारे लिए वस्तुओं का होना न होना दुखद नहीं है। अगर हमारे जीवन में-से व्यक्तियों की दासता निकल जाए, तो व्यक्तियों का होना, न होना हमारे लिए दुखद नहीं है। किन्तु हम न तो वस्तुओं की दासता का त्याग करेंगे, न व्यक्तियों की दासता का त्याग करेंगे और न हम परिस्थितियों की दासता का त्याग करेंगे। फिर दिन-रात हम सोचते रहेंगे कि हम दुखी हैं और हमारे दुख का कारण दूसरे लोग हैं। यह साधक का सोचना नहीं है, यह विचारशील का सोचना नहीं है। यह तो उसका सोचना है कि जो एकमात्र सुख-भोग में ही निरन्तर रत रहना चाहता है, जो सुख की दासता से ऊपर नहीं उठना चाहता। उसका ऐसा सोचना ठीक है।

आप स्वयं विचार कीजिए कि पर-प्रकाश्य वस्तुएं स्वयं-

प्रकाश को दुख नहीं दे सकतीं। किसी भी दार्शनिक दृष्टि कोण से विचार कर लें। आप कहें कि हम यह मानने को राजी ही नहीं हैं कि वस्तुओं से भिन्न भी हमारा जीवन है। मेरा जो सोचने का ढंग है, वह अपने को सामने रख कर है। कल्पना करो कि हम यह मान लें कि वस्तुओं से भिन्न हमारा कोई जीवन नहीं है, वस्तु ही हम हैं। तो मैं आपसे पूछता हूँ कि वस्तुओं से भिन्न हमारा जीवन नहीं है, यह ज्ञान वस्तु को है, कि आपको है ? आपको जो इस बात का ज्ञान हुआ कि वस्तुओं से भिन्न हमारा जीवन नहीं है, क्या यह ज्ञान वस्तु को है ? यदि यह ज्ञान वस्तु को होता, तो एटम बम यह कह देता कि मैं निर्दोष जापानियों के ऊपर नहीं गिरूंगा, कमजोर जापानियों के ऊपर नहीं गिरूंगा, गिरने से इन्कार कर देता। लेकिन उस बेचारे ने कुछ नहीं कहा।

आप जानते हैं कि अगर वस्तु में इस बात का ज्ञान होता, तो जिस विज्ञानवेत्ता ने एटम बम निकाला था, उसकी बुद्धि यह कहती कि अरे भाई देख, जो एटम बम मेरे द्वारा बनाया है, तू इसे पैसों के बदले में बेच कर मेरा दुरुपयोग क्यों करता है ? उसकी बुद्धि भी उसे रोक सकती थी। लेकिन न तो उसको उसकी बुद्धि ने रोका और न एटम बम ने रोका। क्यों नहीं रोका ? भाई, वस्तु जो होती है, उसमें शक्ति तो होती है, लेकिन वस्तु में ज्ञान नहीं होता। साधारण लोग शक्ति के उपयोग को ज्ञान मन लेते हैं या शक्ति के कार्य को ज्ञान मान लेते हैं। जो शक्ति के कार्य को ज्ञान मान लेते हैं, वही लोग वस्तुओं के दास बन जाते हैं।

आज क्या कारण है जो कि आदमी सोचता है कि मैं

तो बहुत बड़ा आदमी हो गया, क्योंकि मैं मिल-औनर हूँ और मेरे पास बहुत-सी सम्पत्ति है, बहुत-सा सामान है। अच्छा भाई, सामान होने से, सम्पत्ति होने से तुम बड़े आदमी हो गए। तो मैं आपसे पूछता हूँ कि तुम्हारी सम्पत्ति बड़ी आदमी हो गई, कि तुम बड़े आदमी हो गए ? तुम तो लोभी हो गए। सम्पत्ति के होने से अगर तुम्हें बड़प्पन मालूम होता है, तो सम्पत्ति का बड़ापन हुआ, जो व्यक्ति के जीवन में लोभ को जन्म देता है। व्यक्तियों से बड़ापन मालूम होना जीवन में मोह को जन्म देता है, परिस्थितियों से बड़ापन मालूम होना जीवन में परिच्छिन्नता को जन्म देता है। अब आप सोचें। क्या लोभी को बड़ा आदमी कह सकते हो ? जो लोभ में, मोह में, परिच्छिन्नता में, काम में आबद्ध है, क्या उसे बड़ा आदमी कह सकते हो ? आप यदि विचार करें, तो आपको इन्कार करना पड़ेगा।

तो फिर आपका बड़ापन, आपकी महानता, आपकी विशेषता किसी वस्तु पर निर्भर नहीं है। हां, एक बात जरूर है कि अगर आप सचमुच बड़े आदमी हैं, तो आपके द्वारा वस्तुओं का सदुपयोग होगा और आपके द्वारा व्यक्तियों की सेवा होगी। यह तो हो सकता है। यदि आपके जीवन से व्यक्तियों की सेवा होती है, यदि आपके जीवन से वस्तुओं का उत्पादन और सदुपयोग होता है, तो आप बड़े आदमी हुए। यदि आप अपने शरीर, प्राण, मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदि का सदुपयोग करते हैं, तो आप बड़े आदमी हैं। लेकिन शरीर बड़ा आदमी हो जाए, मन-बुद्धि आदि बड़ा आदमी हो जाए, तो यह बात सही सिद्ध नहीं होती।

इसलिए भाई, जड़-जगत, पर-प्रकाश्य जगत, परिवर्तनशील जगत आपको दुख नहीं दे सकता। अब आप कहेंगे कि अच्छा, यह बात हम मान लेते हैं कि जगत ने हमें दुख नहीं दिया। तो यह बात हम क्यों न मान लें कि प्रभु ने हमें दुख दिया ? उन्होंने ऐसा विधान क्यों नहीं बनाया कि किसी की मृत्यु नहीं होती, कोई बुड्ढा नहीं होता ? मैं आपसे पूछता हूँ कि आज अगर तुम्हारी बात मान कर विधान में-से मृत्यु का विधान निकाल दिया जाए, तो जिस जगह आप बैठे हैं, क्या वहां आपको बैठने के लिए जगह मिल जाती ? जितने प्राणी हमसे पहले हुए हैं या सृष्टि में आज तक हुए हैं, अगर वे सब प्राणी आजाएं, तो क्या दशा होगी ?

एक समय की हम आपको घटना सुनाएं। हम नैपाल की यात्रा करने जा रहे थे। रेल के डिब्बे में बहुत भीड़ थी। मालगाड़ी का सा डिब्बा हो गया था। महाराज ! हम भीतर घुस तो गए। पर जो भीड़ का रेला लगा, तो महाराज ! यह दशा हुई कि इससे तो मर जाना अच्छा है, पर यात्रा करना अच्छा नहीं है। तो निर्बल के बल राम वाली बात याद आ गई। हम तो एक कौने में आगए, इससे बच गए। नहीं तो हम यही सोच रहे थे कि कौनसा क्षण होगा कि जब रेल से छुटकारा मिलेगा। जरा सी भीड़ में यह दशा हो गई। यदि सभी मरे हुए प्राणी इकट्ठे हो जाएं, तो क्या दशा होगी ? जरा सोचो तो सही।

यह जो विधान है, वह हमसे-आपसे अधिक ईमानदार है, हमसे-आपसे अधिक हितकर है और उपयोगी है। लेकिन हमारी दशा यह हो गई है कि अपने मन की बात पूरी न होने

से, अपनी कामना की अपूर्ति के दुख से क्षोभित् हो गए, क्रोधित हो गए और उस दुख का कारण दूसरों को मानने लगे। मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि भाई, जगत तो हमको दुख दे नहीं सकता। लेकिन प्रभु ने ऐसा विधान क्यों बनाया कि जिससे जीवन में दुख है ? तो मैं आपसे पूछूं कि अगर आपके जीवन में-से दुख का भाग निकाल दिया, तो क्या आप सुख का भोग कर सकते हैं ? आप किसी ऐसे आदमी से पूछिये कि जिसके पास भोजन बहुत हो और भूख न लगती हो। वह कितना दुखी होता है, वैद्य और डाक्टरों के पास जाता है। बिना खाए रहा नहीं जाता और भूख लगती नहीं। वह क्यों दुखी है ? क्योंकि उसके जीवन में-से भूख का दुख निकल गया।

जरा ध्यान दीजिए। जब जीवन में से दुख का भाग निकल जाता है, तब मेरे भाई ! जीवन में सुख के भोग का कोई स्थान ही नहीं रहता। यह जो आप सोचते हैं कि जीवन में-से दुख का भाग निकल जाए। तो मैं आपसे पूछता हूं कि दुख का अंश विल्कुल निकाल देने के बाद क्या आपका कोई जीवन है ? दुख के बिना सुख भोग हो ही नहीं सकता। जब सुख भोगते हैं, तो दुख भोगना ही पड़ेगा। अब आप चाहते क्या हैं कि प्रभु ऐसा विधान बनाते कि जिसमें सुख तो भोगते रहें और दुख न भोगना पड़े।

मैं आप से एक बात कहना चाहता हूँ कि ऐसा भी जीवन है कि जिसमें आपको दुख नहीं भोगना पड़ेगा। लेकिन उस जीवन के लिए इस समय जो आप सुख भोगते हैं, उस सुख के प्रलोभन का त्याग करना होगा। मैं यह नहीं कहता हूं कि

प्राप्त सुख का त्याग कर दें, परन्तु उस सुख के प्रलोभन का त्याग कर दें। इसी प्रकार दुख के भय का त्याग कर दें। यदि आप सुख के प्रलोभन का त्याग कर सकते हैं और दुख के भय का त्याग कर सकते हैं, तो इसी जीवन में आपको ऐसा जीवन मिल सकता है कि जिसमें दुख की गन्ध भी नहीं है। किन्तु वह जीवन कब मिलेगा ? जब आप अपने दुख का कारण किसी और को नहीं मानेंगे और जब आप अपने सुख का हेतु किसी दूसरे को नहीं मानेंगे।

जो दूसरों को सुख का हेतु मानता है, उसमें नवीन राग की उत्पत्ति हो जाती है और जो दूसरों को दुख का हेतु मानता है, उसमें द्वेष की अग्नि जलती रहती है। जहां राग की पराधीनता हो और जहां द्वेष की अग्नि जल रही हो, वहां भला, जीवन कैसे मिल सकता है ? अगर आप कहें कि अपने सुख का कारण किसी और को क्यों न मानें ? तो इसलिए मत मानो कि कोई और आपके सुख का कारश है नहीं। आप कहेंगे कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती, क्योंकि भूख लगती है और कोई प्यारपूर्वक भोजन देता है, तो हमें बड़ा सुख मालूम होता है। तो सुख मालूम होने में यह बातें सामने आईं–भोजन देने वाला, भोजन सामग्री, भूख का लगना और भोगने की शक्ति। सुख के यह कारण दिखाई दिये।

हम आप से पूछते हैं कि भोजन करने की शक्ति का ह्रास होता है कि नहीं, भोग्य वस्तु का विनाश होता है कि नहीं और जो भोजन देता है उसमें भोजन देने का अभिमान होता है कि नहीं ? आप कहेंगे कि यह सब तो होता हैं। तो इन

सबके बदले में जो सुख मिलता है, क्या वह इतना अधिक है कि उसके लिए यह सारी पराधीनता सहन की जाए ? अगर आपको उस सुख का महत्व इतना अधिक मालूम होता है, तब तो आप सुख की वासना से मुक्त नहीं हो सकते। अगर आपको यह मालूम होता है कि भाई, क्षणिक सुख के लिए बहुत-सी पराधीनता सहनी पड़ती है। तब आप सुख की वासना से मुक्त हो सकते हैं।

तब क्या करें ? अपना मूल्य बढ़ा लें। अपना मूल्य बढ़ाने का अर्थ क्या है ? यदि भोजन नहीं मिला है, तो भोजन का चिन्तन न करें। आप कहेंगे कि भूख लगने पर भोजन का चिन्तन होता है। भाई, ऐसी बात नहीं है। जिस दिन आप उपवास करना चाहते हैं, उस दिन आपको भोजन का चिन्तन नहीं होता। लेकिन क्या उस दिन भूख नहीं लगती ? भूख तो लगती है, लेकिन भोजन का चिन्तन नहीं होता। क्योंकि आपका यह निर्णय हो जाता है कि हमें आज भोजन नहीं करना है। तो जब आपका यह निर्णय हो जायगा कि भोजन से हमारा मूल्य अधिक है, तो भोजन का मूल्य हमसे कम हो जायगा। क्यों ? भोजन करने में भोग्य वस्तु का विनाश होता है, भोगने की शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए भूख से भी हमारा मूल्य अधिक है और भोजन से भी हमारा मूल्य अधिक है। और भोजन देने वाले से भी हमारा मूल्य अधिक है।

एक दिन की बात आपको सुनाएं। मैं गंगा के किनारे अकेला रहता था। एक सन्त से बात होने लगी। मैंने कहा कि आपको सायंकाल क्या भूख नहीं लगती ? बोले कि लगती है।

तो मैंने पूछा कि क्या खाते हो ? बोले कि भूख को खाता हूं। अब आप लोगों को आश्चर्य होगा कि कहीं भूख भी खाई जाती है ? हां, एक ऐसी स्टेज आ जाती है जीवन की कि जिसमें भूख खाई जाती है। भूख से यदि हम अपना मूल्य बढ़ा लें, तो हम भोजन से भी अपना मूल्य बढ़ा सकते हैं। भूख लगने पर आप इतने अधीर हो जाते है, व्याकुल हो जाते हैं कि हाय-हाय रे ! भोजन नहीं मिलेगा, तो जीवन ही नहीं रहेगा। भाई, जीवन तो भोजन के मिलते हुए भी नहीं रहेगा।

आप सच मानिए कि अगर हम भूखे मर जाएंगे, तो खाते-खाते भी मर जाएंगे, अमर नहीं हो सकते। भोजन आज तो किसी को अमर कर नहीं सका, कभी कर सकेगा नहीं। तक कहने का मेरा तात्पर्य यह है कि भूख से अपना मूल्य बढ़ाओ और भोजन से भी अपना मूल्य बढ़ाओ। तात्पर्य क्या निकला ? दुख से भी अपना मूल्य बढ़ाओ और सुख से भी अपना मूल्य बढ़ाओ। जब आप सुख और दुख दोनों से अपना मूल्य बढ़ा लेंगे, तब क्या होगा ? फिर आप अपने सुख का और अपने दुख का कारण किसी और को नहीं मानेंगे। जब आप किसी और को अपने सुख-दुख का कारण नहीं मानेंगे, तब न तो नवीन राग की उत्पत्ति होगी और न द्वेष की अग्नि जलेगी।

जब जीवन में राग की उत्पत्ति नहीं होती, तब मालूम है क्या होता है ? तब सहज योग की प्राप्ति होती है। राग रहित होते ही सहज योग की प्राप्ति होती है। यह मत समझिये कि जो ईश्वर को मानता है, उसी को सहज योग प्राप्त होता हैं, अथवा जो आत्मा को मानता है; उसी को प्राप्त होता है,

अथवा जो जगत को मानता है, उसी को प्राप्त होता है। चाहे आप जगत को मानें, चाहे आप आत्मा को मानें और चाहे आप ईश्वर को मानें यह तो आदमी की अपनी मर्जी की बात है। जगत के मानने से, आत्मा या परमात्मा के मानने से वास्तविकता में कोई अन्तर पड़ता हो, ऐसी बात नहीं है।

वास्तविकता क्या है? जब आप राग रहित होंगे, तब आपको योग की प्राप्ति होगी। कोई-कोई साधक कहते हैं कि जब हम शान्त होना चाहते हैं या जब हम शान्त बैठते हैं, तब हमारे चित्त में ऐसे-ऐसे स्फुरण होते हैं कि जो हमें अच्छे नहीं लगते। बात ठीक है, ऐसे स्फुरण हो सकते हैं। क्यों होते हैं? ऐसे जो स्फुरण होते हैं, जो आपको अच्छे नहीं लगते, इसका कारण है कि आप पहले से ही सोच लेते हैं कि हम यह चाहते हैं कि अब चित्त में कोई स्फुरण न हो। जब कोई भी चाह पैदा हो जाती है, तब स्फुरण रहित दशा हो ही नहीं सकती। यह एक बड़ी पहेली है। जो आदमी यह सोचता है कि मैं निर्विकल्प समाधि का सुख लेना चाहता हूँ, उसकी जब तक यह चाह बनी रहेगी, तब तक उसे निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह आश्चर्य की बात है कि चाहने पर निर्विकल्प समाधि नहीं होगी। भाई देखो, न चाहने से वह अपने आप प्राप्त होती है। कब प्राप्त होती है? जब आप अपनी वर्तमान की निर्दोषता में अविचल श्रद्धा रखते हैं। अविचल श्रद्धा कैसी? भाई, जब आप यह सोच लेते हैं कि भूतकाल हमारा-आपका चाहे जैसा रहा हो, परन्तु वर्तमान हम सबका परम निर्दोष है। क्यों निर्दोष है? हमने आज यह मान लिया है कि हम आगे

सुख का, अपने दुख का कारण किसी दूसरे को नहीं मानेंगे। जब हम अपने दुख का कारण किसी दूसरे को नहीं मानेंगे, तब वस्तु और व्यक्ति से जो हमारा सम्बन्ध है, वह टूट जाएगा और उनके प्रति जो आस्था है, वह मिट जाएगी।

आप कहेंगे कि बाबा जी ! आपने तो ऐसी बात बता दी कि जिस प्राण-प्यारी के बिना हम रह नहीं सकते, आप कहते हैं कि उससे सम्बन्ध तोड़ दो। जिस प्राण-प्यारे पति के बिना हम रह नहीं सकते, उनसे सम्बन्ध तोड़ दो। अजी, हम नहीं कहते हैं। तुम ही रोज तोड़ते हो और बार-बार जोड़ते हो। कैसे ? हम आपसे पूछते हैं कि जिसे आप प्राण-प्यारी कहते हो, गहरी नींद में उसे क्यों भूल जाते हो ? भैया, बताओ तो सही कि गहरी नींद में तुम्हारी प्राण-प्यारी कहां रहती है ? गहरी नींद में तुम्हारा मिल कहां रहता है ? गहरी नींद में तुम्हारा पद कहां रहता है ? ईमानदारी और बेईमानी से जोड़ा हुआ धन गहरी नींद में कहां रहता है ? बताओ।

यदि हम तुमसे पूछें कि भैया, गहरी नींद में तुमको क्या दुख था ? तो आप कहेंगे कि कोई दुख नहीं था। पर एक ही दुख था कि उसमें जड़ता थी। हम कहते हैं कि भैया, एक ऐसी नींद भी है कि जिसमें गहरी नींद के समान दुख भी नहीं है, किन्तु जड़ता भी नहीं है। ऐसी नींद तो आपको पसन्द आएगी ही। वह नींद किसको मिलती है ? वह नींद उसको मिलती है, जो अपने दुख-सुख का कारण किसी दूसरे को नहीं मानता। लेकिन वह इस बात का बड़ा ध्यान रखता है कि मेरे द्वारा किसी को दुख न पहुँचे। इस बात का वह बड़ा ध्यान रखता

है। आप कहेंगे कि जब कोई दूसरा किसी के सुख-दुख का कारण है नहीं, तो मैं भला किसी के सुख-दुख का कारण कैसे हो सकता हूँ ? भाई, यह बात तो ठीक है कि तुम किसी के सुख-दुख का कारण नहीं हो सकते, लेकिन तुम होने की कोशिश करते हो। दूसरे को दुख देने की कोशिश करते हो। आप दूसरे को बुरा समझने लगते हैं, इससे बढ़ कर आप किसी को क्या दुख देंगे ? आप कहें कि आज से हम किसी को दुख देने का प्रयास नहीं करेंगे। तो आपको यह मानना पड़ेगा कि कोई भी बुरा नहीं है। जब आप यह मान लेंगे कि कोई बुरा है ही नहीं, तो हम आपको चेलेन्ज देते हैं कि आप अपने मन में बुरा संकल्प उठा तो लीजिए। नहीं उठा सकते।

इसलिए मैंने आपसे निवेदन किया कि अपने दुख का कारण किसी और को न मानने पर भी, अपने सुख का कारण किसी और को न मानने पर भी यह बात भी माननी पड़ेगी कि हम किसी को बुरा समझकर दुख देने का प्रयास नहीं करेंगे। आप भी इस पर विचार कीजिए। मानव सेवा संघ की नीति में अपना विचार किसी पर लादने का नियम नहीं है। आप ही सोचिए कि जिस समय आपको कोई बुरा समझता है, उस समय आपको कितना दुख होता है ? दूसरी बात क्या होती है कि उसी समय आपके मन में ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि जो आपको बुरा समझता है, उसके दोष देखने में आपकी प्रवृत्ति स्वतः हो जाती है। सोचते हैं कि हमको यह बुरा कहता है, यह भी तो बुरा है। यह बात उसी समय पैदा हो जाती है।

अगर आपको कोई बुरा नहीं समझता, तो आपके मन में

कितना धीरज होता है और यह विचार पैदा होता है कि देखो, कितने भले आदमी हैं ! हम जैसे साधारण व्यक्ति को भला आदमी मानते हैं। उसका प्रभाव क्या होता है ? जब हमें कोई भला समझता है, तो हम अपने दोष देख कर व्यथित होते हैं कि हाय ! हाय !! हमको इतना आदर इतना प्यार ! हम अपने बचपन की घटना सुनाएं। हम बचपन में एक स्थान पर सन्त-महात्माओं के दर्शन करने गए। तो वहां के लोगों ने हमारे साथ इतना अच्छा व्यवहार किया कि क्या बताएं ! आदर भी मिला, प्यार भी मिला और वस्तु भी मिली। तो हमारे मन में यह संकल्प उठा कि महात्माओं के दर्शन-मात्र से इतना सुख मिलता है, तो महात्मा होने में कितना सुख मिलता होगा ! मैं सच कहता हूँ कि किसी ने हमें उपदेश नहीं दिया। लेकिन उन सन्त-प्रेमियों के व्यवहार का असर हमारे जीवन पर इतना पड़ा कि भाई, महात्माओं के दर्शन के लिए हम आए थे। उसमें इतना सुख मिला कि सुन्दर भोजन भी मिला, आदर भी मिला, प्यार भी मिला और सम्मान भी मिला, सब कुछ मिला। तो न जानें महात्मा होने में क्या मिलता होगा !

कहने का मेरा तात्पर्य यह है कि जब आप किसी को बुरा समझने लगते हैं, तब दूसरों में क्या प्रतिक्रिया होती है और जब आप किसी को भला समझते हैं, तब क्या प्रतिक्रिया होती है ? जब हमें कोई भला समझता है, तब हमारे जीवन में क्या प्रतिक्रिया होती है और जब हमें कोई बुरा समझता है, तब हमारे जीवन में क्या प्रतिक्रिया होती है। इस सम्बन्ध में विचार करने पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि भाई, सबसे बड़ी सेवा अपनी और दूसरों की इसी में है कि हम किसी को बुरा न

समझें। दुनियां का सबसे बड़ा आदमी वही हो सकता है, जो किसी को बुरा नहीं समझता। दुनियां का सबसे बड़ा आदमी वह भी हो सकता है, जो किसी से सुख की आशा नहीं करता और अपने दुख का कारण किसी और को नहीं मानता।

जो अपने दुख का कारण किसी और को नहीं मानेगा, वह निःसन्देह इसी जीवन में महापुरुष हो जाएगा। जो अपने सुख का कारण किसी और को नहीं मानेगा, वह इसी जीवन में महापुरुष हो जाएगा। जो दूसरे को बुरा नहीं समझेगा, वह महापुरुष हो जाएगा। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। मैं आपसे पूछता हूं कि इन बातों के मानने में आपको क्या आपत्ति है, क्या कठिनाई है ? मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इन बातों के मानने में न कोई कठिनाई है और न कोई हानि है। हम सब महापुरुष हो सकते है। क्योंकि महानता से प्राणी मात्र की स्वरूप की एकता है, जातीय एकता है। स्वरूप की एकता से क्या मतलब ? मानव मात्र की महानता से दूरी नहीं है, भेद नहीं है। जातीय एकता से क्या मतलब ? महानता से नित्य सम्बन्ध है।

अब यह दार्शनिक चर्चा है कि भाई, किसी ने जातीय एकता मानी, किसी ने स्वरूप की एकता मानी। पर इस चक्कर में आपको पड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन जरूरत इस बात की है कि आप दूसरे के साथ सबसे बड़ी भलाए यही कर सकते हैं कि आप किसी को बुरा न समझें। जिस समय आप किसी को बुरा नहीं समझेंगे, तो सुखियों को देखकर ईर्ष्या नहीं होगी, क्रोध नहीं आएगा और

दुखियों को देखकर अभिमान नहीं आएगा। जब दुखियों को देखकर अभिमान नहीं आएगा, तब उनके प्रति करुणा जगेगी। जब सुखियों को देखकर क्षोभ नहीं होगा, क्रोध नहीं होगा, तो उनके प्रति प्रसन्नता जगेगी।

आज हमारी दशा क्या है ? आज हमारी दशा यह है कि जब कोई अपने से अधिक सुखी दिखाई देता है और उससे ममता नहीं है, तो सुखी पर क्रोध आता है और बुद्धिमान बनकर यह सोचते हैं कि इसने दूसरों पर अत्याचार करके सुख का सम्पादन किया है। हम आपसे पूछें कि कृपा सिन्धु ! आप क्या चाहते हैं ? बोले कि हम भी सुख का सम्पादन करना चाहते हैं। तो जिस सुख के सम्पादन को आप यह मानते हैं कि अनेक दुखियों के दुख से सुख का सम्पादन हुआ है, तो क्या आपके जीवन से अनेक दुखियों को दुख नहीं मिलेगा ? अवश्य मिलेगा भाई। अन्तर केवल इतना है कि अब तक वे अत्याचार करते रहे, अब हम करेंगे। भाई, ऐसे सुधार को मैं तो नहीं मानता।

एक सज्जन मेरे पास इलाहाबाद में आए। वे कम्यूनिष्ट विचार के थे। वे कहने लगे कि मैं ईश्वर और धर्म-कर्म में तो विश्वास नहीं करता हूँ। लेकिन आप मुझे मानव मालूम होते हैं। मैं आप पर विश्वास करता हूं। उन्होंने मुझे पिता जी सम्बोधन करके कहा कि कोई सुन्दर बात बताओ। मैंने कहा कि मैं एक बात बताना चाहता हूं कि तुम किसी सुखी को देख-कर क्षोभित मत होना। इतनी बात मान लो। मैं नहीं कहता कि तुम ईश्वर को मान लो या किसी धर्म को मानो। लेकिन

किसी सुखी को देख कर क्षोभित मत होना। क्योंकि जब तुम सुखी को देख कर क्षोभित नहीं होगे, तब तुम्हारे जीवन में प्रतिहिंसा नहीं आएगी। जब प्रतिहिंसा नहीं आएगी, तो तुम्हारा चित्त शान्त होगा। जब चित्त शान्त होगा, तो विचार का उदय होगा और अविचार की निवृत्ति होगी। जब अविचार की निवृत्ति होगी, तब वास्तविकता का अनुभव होगा।

देखो भाई, साधन का अर्थ यह नहीं है कि आज ईश्वर-वादी इस बात की कोशिश करे कि दूसरे लोग ईश्वर को मान लें। साधन का अर्थ यह नहीं है कि आज अध्यात्मवादी यह कोशिश करे कि दूसरे लोग अध्यात्मवाद को मान लें। साधन का अर्थ यह भी नहीं है कि आज भौतिकवादी यह कोशिश करे कि लोग आत्मा और परमात्मा को न मानें। यह साधन का अर्थ नहीं है। साधन का अर्थ क्या है ? आप जो मानते हैं, आपको जो अच्छा लगता है, उसको आप मानें और उस मान्यता के आधार पर अपने को इतना सुन्दर बना लें कि आपको अपने सुख-दुख का कारण दूसरा न मालूम हो।

आप कहेंगे कि अगर कोई सुख-दुख का कारण मालूम पड़े, तो उसमें हानि ही क्या है ? भाई देखो, जब तक आपको अपने सुख-दुख का कारण दूसरा मालूम पड़ेगा, तब तक आप राग-द्वेष रहित नहीं हो सकते। जब तक आप राग-द्वेष रहित नहीं हो सकते, तब तक न तो भौतिकवाद की दृष्टि से चिर-शान्ति मिल सकती है और न आपका जीवन विधान हो सकता है। देखिए, भौतिक दर्शन ने हमें क्या दिया ? हमें बड़ी सुन्दर चीज भौतिक दर्शन के विश्वास ने दी कि हर भाई-हर बहन

चिरशान्ति पा सकते हैं और उनका जीवन समाज के लिए विधान बन सकता है। आप कहेंगे, कैसे ? भौतिक दर्शन का तात्पर्य यह है कि समस्त सृष्टि एक है। यह भौतिक दर्शन है। जहां समस्त सृष्टि एक है, वहां क्या कोई गैर होगा ? आपको मानना पड़ेगा, नहीं। क्या वहां कोई और होगा ? मानना पड़ेगा, नहीं।

जब जीवन में गैरियत नहीं रहती, तब क्या होता है ? प्रीति का उदय। जब कोई और नहीं रहता, तब क्या होता है ? निर्भयता का उदय। कोई और हो, तो वह हमको भय देता है। आज आप तो भौतिक दर्शन से भी बहुत दूर हैं। अगर भौतिक दर्शन से दूर न होते, तो अमेरिका को रूस से भय क्यों लगता और रूस को अमेरिका से भय क्यों लगता, पाकिस्तान को हिन्दुस्तान से भय क्यों लगता और हिन्दुस्तान को पाकिस्तान से भय क्यों लगता ? आप सोचिए कि जब सारी सृष्टि एक है, तो कोई और है नहीं। भाई, जब कोई और है नहीं, तो भय कैसा ? जब कोई गैर नहीं, तो प्रीति क्यों नहीं ? आज अमेरिका और रूस के बीच में मित्रता क्यों नहीं है, और पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच में मित्रता क्यों नहीं है ? क्यों नहीं आज एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के साथ, एक वर्ग दूसरे वर्ग के साथ मित्रता और प्रेम करते ?

इसलिए प्रेम नहीं करते, क्योंकि वे भौतिक दर्शन में भी आस्था नहीं करते। भौतिक दर्शन की साधना का अर्थ क्या है ? आज से हम समस्त विश्व को एक मानेंगे और समस्त विश्व को एक मान कर हम किसी का बुरा नहीं चाहेंगे, किसी

के साथ बुराई नहीं करेंगे। यह है भौतिक दर्शन की साधना। आप विचार कीजिए। हम किसी के साथ बुराई नहीं करेंगे, हम किसी का बुरा नहीं चाहेंगे, हम किसी को बुरा नहीं समझेंगे—यह है भौतिक दर्शन की साधना।

आप कहेंगे कि जो हमारे साथ बुराई करते हैं, क्या हम उनका भी बुरा न चाहें ? तो मैं आपसे ही पूछता हूं कि आपके ही दांत से आपकी जीभ कट जाती है, तब आप क्यों नहीं जीभ को हुक्म देते कि वह पत्थर लाकर दांत को तोड़ दे ? आप कहेंगे कि ऐसा कैसे कर सकते हैं ? यह दोनों तो अपने हैं। इसी प्रकार औरों को अपना क्यों नहीं मानते ? बोले, हमारे और इनके रंग में भेद है, कर्म में भेद है, बोलचाल में भेद है। हम कहें कि किसी के बाल हों काले और दांत हों सफेद, दौनों में रंग-भेद है। तो सिर को काटकर अलग कर दो, हटा दो। कोई कहे कि हमारे और इनके कर्म में भेद है। तो हम कहें कि हाथ का, पैर का और आंख का कर्म क्या एक है ? निकाल फैंको इन सबको।

सोचो भाई। जहाँ आत्मीयता होती है, जहां एकता का भाव होता है, वहां कर्म का भेद, रंग का भेद, भाषा और मान्यता का भेद मालूम नहीं होता। तो भौतिक दर्शन ने हमें यह नहीं बताया कि कोई बुरा है। अपितु यह बताया है कि हम सब एक हैं। भौतिक दर्शन ने एकता का पाठ पढ़ाया है, भिन्नता का नहीं। जब हम और आप एक हैं, तो क्या हम आपके प्यार के अधिकारी नहीं हैं, क्या आप हमारे प्यार के

अधिकारी नहीं है ? क्या हम आपको बुरा समझेंगे ? अगर हम आपको बुरा समझेंगे, तो आप भी हमको बुरा समझेंगे ।

भौतिक दर्शन की साधना क्या है ? निर्भयता और प्रीति । जहां निर्भयता होती है, वहां प्राप्त सामर्थ्य का सदुपयोग होने लगता है । जहां प्रीति होती है, वहां भेद मिटने लगता है । तो प्रीति और निर्भयता का सम्पादन करना भौतिक दर्शन की बात है । हां, यह दूसरी बात है कि निर्भयता का अर्थ हम यह लगालें कि भाई, हम किसी को भय नहीं देंगे । जो किसी को भय नहीं देता, वही निर्भय रह सकता है । जो किसी को भी भय देता है, वह भयभीत रहता है । आज की लड़ाइयां छिप कर होती हैं, अपने को बचा कर होती हैं । क्यों ? क्योंकि लड़ने वाले वे भयभीत हैं । भयभीत होने से वे बल का सदुपयोग नहीं कर सकते ।

हमसे एक मिलिटरी वाले से बात हुई । हमने कहा कि भाई, एक बात बताओ । जितना खर्च लड़ाई के सामान में होता है, क्या उतना खर्च होना जरूरी है ? बोले, नहीं स्वामी जी ! अब हमारी मिलिटरी में यह कानून बन गया है कि योग्य सैनिक वह माना जाता है, जो कम सामान खर्च करे और लड़ सके । आप जानते ही हैं कि अन्त में मनुष्य सत्य की ओर ही चलता है । तो कहने का मेरा तात्पर्य यह था कि भाई, भौतिक दर्शन के आधार पर भी आप किसी को बुरा नहीं समझ सकते, आप किसी को गैर नहीं समझ सकते, आप किसी का बुरा नहीं चाह सकते, आप किसी के साथ बुराई नहीं कर सकते ।

जब हमें किसी के साथ बुराई करनी ही नहीं है, जब हम किसी का बुरा चाहेंगे ही नहीं, तो वर्ग विभाजन कैसा, देश विभाजन कैसा, पार्टी फीलिंग कैसी ? नहीं होगी। जब यह सब नहीं होगा, तब प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इतना सुन्दर हो जाएगा कि उस जीवन का लोग अनुसरण करेंगे। इसी का नाम है, सुधार और सुधारक। सुधारक उसे नहीं कहते, जो समाज में विद्रोह पैदा कर दे। सुधारक उसे कहते हैं, जो समाज में एकता को जन्म दे। एकता का जन्म बिना प्रीति के नहीं होता और प्रीति बिना अपना मानें नहीं होती। तो समस्त विश्व को जो अपना मान लेता है वह है, भौतिकवादी। उस भौतिक-वादी के जीवन में प्रीति की गंगा लहराती है और वह सुख-दुख की दासता से मुक्त होता है।

आप कहेंगे कि सारे विश्व को अपना मानने पर एक क्षण भी सुखी-दुखी हुए बिना नहीं रह सकते। तो भाई. आप सुख-दुख का भोग करते हैं अपनी एक नई दुनिया बना कर। यदि आप अपनी एक नई दुनियां न बनाएं, तो न आप सुख का भोग कर सकते हैं और न दुख का भोग कर सकते हैं। क्योंकि संसार में इतना सुख है कि आप उसके भार से दब जाएंगे और इतना दुख है कि आपका पता ही नहीं चलेगा। इसलिए भाई, जब हम सारे विश्व को अपना मान लेते हैं, तब सुख-दुख का भोग नहीं कर सकते। आज हम भौतिक दर्शन से भी बहुत नीचे गिर गए हैं। जब भौतिक दर्शन से ही बहुत नीचे गिर गए हैं, तब अध्यात्म दर्शन और आस्तिक दर्शन का आरम्भ ही कैसे होगा ?

मेरा निवेदन यह था कि समस्त विश्व के साथ एकता

स्वीकार करना मानवमात्र का पहला साधन है। जब हम समस्त विश्व को अपना मान लेते हैं या अपने से अभिन्न मान लेते हैं, तब क्या होता है कि सुख और दुख के भोग की सामर्थ्य ही नहीं रहती। न हम सारे विश्व का सुख भोग सकते हैं और न सारे विश्व का दुख भोग सकते हैं। जहाँ सुख-दुख के भोग की सामर्थ्य नहीं रहती, वहां सुख का सदुपयोग होने लगता है और दुख का भी सदुपयोग होने लगता है। सुख का सदुपयोग किसमें होता है ? उदारता में। और दुख का सदुपयोग किसमें होता है ? विरक्ति में।

वह जो उदारता और विरक्ति है, वह हमें भौतिक दर्शन से अध्यात्म दर्शन में प्रवेश कराती है। उदारता और विरक्ति कैसे प्रवेश करा देती है ? उदारता जो है उसमें सुख-भोग की रुचि का नाश हो जाता है और विरक्ति जो है उससे दुख के भय का नाश हो जाता है। जहां सुख-भोग की रुचि का नाश हुआ और जहां दुख के भय का नाश हुआ, वहां अपने आप सुख-दुख से अतीत के जीवन की प्राप्ति होती है। सुख-दुख के सदुपयोग का नाम ही भौतिकवाद है और सुख-दुख से अतीत के जीवन का नाम ही अध्यात्मवाद है। जहां सुख-दुख से अतीत के जीवन की प्राप्ति होती है, वहीं परम प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। तो जो परम प्रेम की अभिव्यक्ति है वह है, आस्तिक दर्शन।

कहने का तात्पर्य यह था कि यह मानव-जीवन इतना सुन्दर जीवन है कि भौतिक दर्शन की दृष्टि से भी, अध्यात्म दर्शन की दृष्टि से भी और आस्तिक दर्शन की दृष्टि से भी आप इतने

सुन्दर हो सकते हैं कि आपको आवश्यकता सभी को हो और आपकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं। जिसकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं रहती, वही मुक्त है और जिसको सभी को आवश्यकता रहती है, वही भक्त है। तो आप भक्त भी हो सकते हैं आर मुक्त भी हो सकते हैं और इसी जीवन में अभी हो सकते हैं। यही जीवन का सत्य है।

इसलिए आप इसी क्षण से तीन बातें स्वीकार कर लीजिए—(१) हम किसी को बुरा नहीं समझेंगे (२) हमारे दुख का कारण कोई और नहीं है (३) हमारे सुख का कारण कोई और नहीं है। जब आप किसी को बुरा नहीं समझेंगे, तब सर्वात्मभाव की अभिव्यक्ति होगी। जब आप अपने दुख का कारण किसी और को नहीं मानेंगे, तो प्रेम की अभिव्यक्ति होगी। जब आप अपने सुख का कारण किसी और को नहीं मानेंगे, तो स्वाधीनता की अभिव्यक्ति होगी। सर्वात्मभाव, प्रेम और स्वाधीनता—यह है अपना मानव-जीवन। जहां स्वाधीनता है, वहीं मुक्ति है। जहां सर्वात्मभाव है, वहीं एकता है और जहां प्रेम है, वहीं अगाध अनन्त रस है। इसी जीवन में हम सबको मानवता प्राप्त हो सकती है। इसीमें जीवन की पूर्णता है ॥ॐ॥



३७

(ब)

प्रवचन :

मुझे ऐसा मालुम होता है कि प्रेमी होने के लिए भी स्वाधीन होना जरूरी है, उदार होने के लिए भी स्वाधीन होना जरूरी है और दुख-निवृत्ति के लिए भी स्वाधीन होना जरूरी है। तो स्वाधीन होना एक ऐसी कौमन बात है कि जो सबके लिए जरूरी है। अब प्रश्न यह होगा है कि हम कैसे स्वाधीन हो सकते हैं ? पराधीनता ले कर तो पैदा ही हुए हैं और उसी को ले कर जी भी रहे हैं, यह बात ठीक है। पर स्वाधीन हो सकते हैं। स्वाधीन होने का सबसे अच्छा उपाय क्या है ? तो मुझे ऐसा लगता है कि जो मौजूद में आस्था रखता हो, और मिले हुए का सदुपयोग करता हो और देखे हुए की कामना न रखता हो, वह स्वाधीन हो जाता है।

स्वाधीनता किसी परिस्थिति में नहीं है कि यदि हमको अमुक परिस्थिति मिल जाएगी, तो हम स्वाधीन हो जाएंगे। यदि किसी वस्तु के द्वारा स्वाधीनता मिलेगी, तो उस वस्तु की अधीनता हो जाएगी। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा स्वाधीनता मिलेगी, तो उस व्यक्ति की अधीनता हो जाएगी। खोज करने पर मालूम होगा कि ऐसी कोई वस्तु या परिस्थिति

नहीं है, जिससे स्वाधीनता मिल जाए। आप लोगों में-से कोई यह मानते हों कि अमुक परिस्थिति या वस्तु विशेष से स्वाधीनता मिल सकती है, तो बताएं। मुझे अपनी राय बदलने में कोई एतराज नहीं होगा, तुरन्त बदल दूंगा।

मेरा अपना अनुभव यह है कि स्वाधीनता न तो किसी और के द्वारा और न किसी वस्तु या परिस्थिति द्वारा मिलती है। यह स्वाधीनता तो अपने ही द्वारा प्राप्त करनी होती है। स्वाधीनता में न कोई सहायक है और न कोई बाधक है। यह जो हम लोग कहते हैं कि दूसरे लोगों ने हमारी स्वाधीनता छीन ली या दूसरे लोग हमको स्वाधीनता दे सकते हैं। पर ऐसी बात नहीं है। स्वाधीनता एक ऐसी चीज है जो कि अपने ही द्वारा प्राप्त की जा सकती है, किसी और के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती।

स्वाधीनता के लिए सबसे पहली बात क्या है कि हम थोड़ी-देर के लिए—२, ४ या १० मिनट, इससे ज्यादा नहीं—बिना कोई काम करे अकेले रहने का स्वभाव बनाएं। यह कोशिश करें कि दस मिनट तक हम कोई काम नहीं करेंगे, अकेले रहेंगे, बिना सामान और बिना साथी के रहेंगे, शरीर को लेकर नहीं। हमें जो अपने बहुत से साथी मालूम होते हैं, बहुत सा सामान भी मालूम होता है, उनके बिना रहेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम साथियों को नाराज कर दें या सामान को बरबाद कर दें, ऐसा मेरा मतलब नहीं है। लेकिन थोड़ी देर के लिए ऐसा अनुभव करें कि मानलो, हमारे पास

हमारा शरीर भी नहीं रहेगा, तब हम होंगे कि नहीं ? ऐसा प्रश्न अपने सामने रखें।

सन् १९५९ की बात है। बम्बई में हार्ट के दौरे हो चुके थे। डाक्टरों के मत के अनुसार मैं लेटा तो नहीं ज्यादा। मैं बम्बई से पटना आ रहा था। रास्ते में वृन्दावन के लिए जर्नी ब्रेक थी। तो मैंने ट्रेन में स्वप्न देखा कि मैं बोलना चाहता हूँ, पर बोल नहीं पाता। हाथ उठाकर इशारा करना चाहता हूँ, वह भी नहीं कर पाता। पैर से दूसरे आदमी को जगाना चाहूँ, पर वह भी नहीं कर पाता। यानी मैं जो चाहता हूँ, उसे कर नहीं पाता। ऐसा स्वप्न देखा। स्वप्न में जब प्राणी दुखी हो जाता है, तो नींद खुल जाती है। तो मेरी आँख खुल गई। मैंने सोचा कि अरे, वह तो स्वप्न था।

फिर मैं सोचने लगा कि वह तो स्वप्न था। परन्तु क्या एक दिन ऐसा नहीं आएगा कि जब हम बोलना चाहेंगे और नहीं बोल पाएंगे, सुनना चाहेंगे और नहीं सुन पाएंगे, देखना चाहेंगे और नहीं देख पाएंगे ? एक दिन ऐसा आएगा तो भाई। मैंने सोचा कि मुझे स्वप्न में इस दशा में तकलीफ क्यों हुई ? मुझे कोई तकलीफ तो थी नहीं, कहीं दर्द या पीड़ा भी नहीं थी। बस, यही था कि जो मैं करना चाहता हूं, वह नहीं कर पाता। मैंने सोचा कि एक दिन तो ऐसा आएगा ही।

यदि हमें और आपको यह मालूम हो जाए, यह अनुभव हो जाए कि कुछ न करने में भी जीवन है, कुछ न करने

पर भी हम हैं और हमारा जीवन है, तो अभी-अभी स्वाधीन हो जाएं । स्वाधीन हमें कौन नहीं होने देता ? हम जो यह सोचते हैं कि हमारे पास अमुक वस्तु नहीं रहेगी, तो मानों हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा, या अमुक साथी नहीं रहेगा, तो हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा । ऐसा जो हम सोचते हैं, इसी से हम पराधीन हैं ? लेकिन कौन साथी है, जो हमेशा साथी रहेगा, कौनसा सामान है, जो आपके पास सदैव रहेगा ? क्या आप हमेशा करते रह सकेंगे ? हमेशा के लिए कोई साथी नहीं मिलेगा, हमेशा के लिए कोई वस्तु नहीं मिलेगी और हमेशा करते भी नहीं रहेंगे । श्रम-रहित होना ही पड़ेगा, साथी रहित होना ही पड़ेगा और सामान रहित होना ही पड़ेगा ।

आप साथियों के रहते हुए, सामान के रहते हुए, करने की शक्ति रहते हुए थोड़ी-थोड़ी देर के लिए विश्राम करना पसन्द करें। आलस्य या अकर्मण्यता के साथ नहीं। विश्राम कब मिलता है ? जब जरूरी काम पूरा कर डालते हैं और बिना जरूरी काम छोड़ देते हैं, तब विश्राम मिलता है । अगर हम थोड़ी-थोड़ी देर के लिए विश्राम करने का स्वभाव बना लें, अकेले होने का स्वभाव बना लें, तो हमें अपने में ही कहीं बाहर नहीं—प्रीतम की प्राप्ति हो जाएगी। यह बात अभी अनुभव करने की है और अपने द्वारा अनुभव करने की है ।

आप सोचिए कि जब हम नहीं बोलते हैं, तो बोलने की शक्ति कहाँ चली जाती है ? जब हम नहीं देखते हैं, तो देखने की शक्ति कहाँ चली जाती है ? जब हम नहीं सुनते हैं, तो सुनने की शक्ति कहाँ चली जाती है ? जैसे हम देखने की

दशा में अपने को अनुभव करते हैं, क्या वैसे ही हम न देखने की दशा में अनुभव नहीं करते ? जैसे हम सुनने की दशा में अनुभव करते हैं, वैसे ही क्या न सुनने की दशा में अनुभव नहीं करते ? हम दोनों अवस्थाओं से परिचित हैं, क्रियाशीलता से भी और न करने की स्थिति से भी। करने और न करने, दोनों ही दशाओं में हम जरूर होते हैं।

करने में क्या है और न करने में क्या है, देखने में क्या और न देखने में क्या है, सुनने में क्या है और न सुनने में क्या है—इसका आप अनुभव कर चुके हैं। क्या अनुभव कर चुके हैं ? देखते-देखते देखने की शक्ति का ह्रास होता है और आप कुछ काल के लिए स्वयं न देखने की स्थिति में होते हैं। बोलते-बोलते बोलने की शक्ति का ह्रास होता है और कुछ देर के लिए आप स्वय न बोलने की स्थिति में होते हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति के अन्त में आप स्वयं कुछ काल के लिए निवृत्ति में होते हैं। इस बात में किसी भाई, किसी बहन को ऐतराज हो, विरोध हो, तो प्रश्न कर सकते हैं। नहीं बोलने पर मैं समझूंगा कि आपको विरोध नहीं है।

अब सोचने की बात इतनी रह गई कि यदि आज हमें और आपको अपने उस जीवन का अनुभव हो जाए कि जो न करने की स्थिति में है, तो हम पराधीन नहीं रहेंगे। तो न करने की स्थिति में जीवन है, इसका अनुभव करना हर उस भाई, उस बहन के लिए आवश्यक है, जिसे स्वाधीनता चाहिए। अगर आपका वह अनुभव है कि करने में ही जीवन है, तो स्वाधीनता का प्रश्न ही नहीं है। बिना 'पर' का आश्रय लिये

हम परिश्रम करते हैं क्या ? क्या राय है, बोलो भाई ? अगर आप यह मानते हैं कि नहीं कर सकते, तो स्वाधीन होने के लिये परिश्रम से रहित होना ही पड़ेगा। परिश्रम से रहित होने के लिये आवश्यक कार्य पूरा करना पड़ेगा कि नहीं ? अनावश्यक कार्य छोड़ना पड़ेगा कि नहीं ? अब यह कितना जरूरी होगया कि अनावश्यक कार्य का त्याग कर दें और आवश्यक कार्य को पूरा कर दें। तब हमें विश्राम मिलेगा। उस विश्राम में भक्त का भगवान् मौजूद है, जिज्ञासु का तत्वज्ञान मौजूद है और योगी का योग मौजूद है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह की बात नहीं है। यदि भक्त का भगवान् विश्राम में नहीं है, यदि योगी का परम तत्व विश्राम में नहीं है, यदि जिज्ञासु का तत्वज्ञान विश्राम में नहीं है, तो फिर भाई, वह सभी के लिये सम्भव नहीं है।

जब कार्य करने की क्षमता दो व्यक्तियों की भी समान नहीं है, तो कार्य करने में जो भगवान् मिलेगा, वह किसी एक ही आदमी को मिलेगा, दो को भी नहीं मिलेगा। लेकिन भगवान् तो हर भक्त को मिलना चाहिये, योग हर योगी को मिलना चाहिये। जो चीज सभी को मिल सकती है, वह विश्राम में है, श्रम में नहीं। अब जो कुछ भी करना है वह विश्राम की तैयारी के लिये करना है। लेकिन हमसे गलती क्या होती है कि संसार से विरक्त हो कर, विमुख हो कर जब आत्मा और परमात्मा की ओर चलना चाहते हैं, तब भी उसी श्रम का सहारा लेते हैं। यह बड़ी भारी भूल होती है।

देखिये, संसार की ओर चलने के लिए आपको श्रम अपे-

क्षित है। लेकिन आत्मा और परमात्मा की ओर अग्रसर होने के लिये न श्रम अपेक्षित है, न पराश्रय अपेक्षित है। दोनों ही की अपेक्षा नहीं है। अगर आपको यह मालूम हो जाए कि पराश्रय और परिश्रम के बिना जीवन है, तो उस जीवन में हम सबका अधिकार हो सकता है। क्यों ? हम सब श्रम-काल में एक नहीं हैं, विश्राम-काल में एक हैं। हमने किसी का आश्रय लिया और आपने किसी और का आश्रय लिया, क्या हम और आप एक हो जाएंगे ? पर हम भी सब आश्रय छोड़ दें और आप भी छोड़ दें, तो क्या हम और आप अलग रह जाएंगे ? क्या राय है ? हम भी कुछ न करें और आप भी कुछ न करें, तो हम और आप बराबर होंगे कि आगे-पीछे होंगे ? हम भी कुछ करें और आप भी कुछ करें, तो क्या हम और आप बराबर हो पाएंगे ? हम भी 'पर' का आश्रय लें और आप भी 'पर' का आश्रय लें, तो क्या हम और आप समान हो पाएंगे ?

देखो भाई, इस बात का यह अर्थ मत लगा लेना कि मैं आलस्य और अकर्मण्यता का समर्थन कर रहा हूँ। ऐसा मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं तो आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मेरे जीवन में जो बड़ी भारी बेचैनी है, वह इस बात को ले कर रही है कि वह जीवन जो सभी के लिये उपयोगी हो, वह सबको मिलना चाहिये कि नहीं ? सबसे अच्छा जीवन सबको मिलना चाहिये, कि किसी एक को मिलना चाहिये ? सबको मिलना चाहिये। तो सबको जो जीवन मिल सकता है, वह स्वाधीनता और विश्राम में है, वह पराधीनता और परिश्रम में नहीं है। यह एक दार्शनिक बात मैंने आपसे निवेदन की। अब आप देखें

कि जब हम स्वाधीन हो जाते हैं, तब उदार होने में कठिनाई होती है क्या, समता पाने में कठिनाई होती है क्या, प्रियता जगाने में कठिनाई होती है क्या ? अब आप देखिये कि स्वाधीन होते ही उदारता, समता और प्रियता हर भाई को, हर बहन को मिल सकती है।

उदारता का अर्थ क्या है, समता का अर्थ क्या है और प्रियता का अर्थ क्या है ? इस पर थोड़ा विचार कीजिए। उदारता का अर्थ है कि जिसका जीवन करुणा और प्रसन्नता से भर जाएं, करुणा से भी और प्रसन्नता से भी जीवन भरा रहे। आप कहेंगे, कैसे ? किसी के पिता से पूछा जाए कि जब तुम्हारा लड़का बहुत योग्य सिद्ध हो जाता है, तो तुम्हें प्रसन्नता होती है कि नहीं ? जिसे हम अपना मानते हैं उसे सुखी देखते हैं, तो प्रसन्नता होती है कि नहीं ? प्रसन्नता होती है। ऐसे ही जिसे हम अपना मानते हैं उसे जब दुखी देखते हैं, तो करुणा आती है कि नहीं ? तो यह करुणा और प्रसन्नता स्वाभाविक गुण है कि किसी परिश्रम से प्राप्त की जाती है ? स्वाभाविक है। लेकिन कब ? जब सुखी को अपना मानें तब, जब दुखी को अपना मान तब। हम आपसे पूछें कि संसार में जो आप देख रहे हैं, सुखी और दुखी से भिन्न भी कुछ देख रहे हैं क्या ? क्या राय है ?

देखो भाई, ज्ञान-ध्यान की बात मत करो, जीवन की अनुभूति को ले कर चलो। आप जब संसार की ओर देखते हैं, तो या तो किसी को सुखी अनुभव करते हैं या किसीको दुखी अनुभव करते हैं। चाहे किसी भी दृष्टि से देखें, या तो कोई

दुखी है या कोई सुखी है। यही तो कहेंगे ? अच्छा, जब सुखी पर दृष्टि जाती है, तो प्रसन्नता क्यों नहीं होती और दुखी पर नजर पड़ती है, तो करुणा क्यों नहीं होती ? तब आप कहेंगे कि साहब क्या बताएं, उनको हम अपना नहीं मानते, इसलिये दुखी को देख कर करुणा नहीं होती और सुखी को देख कर प्रसन्नता नहीं होती। भाई, अपना क्यों नहीं मानते ? तो आप कहेंगे कि उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। भाई, सम्बन्ध तो है। अच्छा बताओ, एक ही आकाश से तुम लोगों को अवकाश मिलता है कि अलग-अलग आकाश से ? एक ही वायु से स्वांस लेते हैं कि अलग-अलग वायु से ? एक ही भूमि पर आश्रय पाते हैं कि अलग-अलग भूमि पर ? एक पर। फिर आप कैसे कहते हैं कि हमारा सबसे सम्बन्ध नहीं है ?

यह बात अलग है कि आप किसी भी नाते से मानें। लेकिन आप यह नहीं कह सकते कि किसी-न-किसी नाते से सभी अपने नहीं हैं। जब सभी अपने हैं, तो सुखी को देख कर प्रसन्नता क्यों नहीं उदित होती और दुखी देख कर करुणा क्यों उदित होती है ? या तो हम किसी को सुखी अनुभव करते हैं या किसी को दुखी अनुभव करते हैं। तो हमारे जीवन में करुणा और प्रसन्नता आनी चाहिये। कोई कहे कि हम क्यों किसी को देखें ? यदि हम किसी को नहीं देखते, तो देखे हुए का प्रभाव हम पर नहीं होना चाहिये। क्या राय है ?

अगर कोई कहे कि हम इस बात को नहीं मानते कि सभी अपने हैं। हम तो इस बात को मानते हैं कि कोई अपना

नहीं है। तो भाई, जब कोई अपना नहीं है, तो देखे हुये का प्रभाव हम पर क्यों होता है ? तब समता आ जानी चाहिये कि नहीं ? जीवन में या तो करुणा और प्रसन्नता आनी चाहिये आप या समता आनी चाहिये । कहें कि साहब, न तो हम यह मानने को राजी हैं कि सभी अपने हैं और न हम यह मानने को राजी हैं कि कोई अपना है। तो भाई, क्या मानने को राजी हो ? बोले, किसी को अपना मानेंगे, किसी को अपना नहीं मानेंगे। अच्छा, इस मान्यता को ले कर आप राग-द्वेष से रहित हो सकते हैं क्या ? क्या राय है ? नहीं हो सकते।

जब राग-द्वेष से रहित नहीं हो सकते, तब क्या आपको शान्ति मिल सकती है, स्वाधीनता मिल सकती है, प्रेम मिल सकता है ? मानना पड़ेगा कि नहीं मिल सकता। कोई कहे कि साहब ठीक है, यह तो आपने दुनियाँ की बात कहीं। पर न हम यह मानने को राजी हैं कि सभी अपने हैं और न हम यह मानने को राजी हैं कि कोई अपना नहीं है। हम तो इस बात को मानने को राजी हैं कि परमात्मा अपना है। यह भी तो एक दर्शन है। अगर आप परमात्मा को अपना मानते हैं, तो मैं आपसे पूछता हूं कि अपना अपने को प्यारा लगता है कि नहीं, अपने की अपने में स्मृति होती है कि नहीं ? होती है। तब तो जीवन में स्मृति होनी चाहिये।

आप देखेंगे कि नीरसता का अत्यन्त अभाव या तो करुणा से होता है, या प्रसन्नता से होता है, या समता से होता है, या प्रियता से होता है। आप किसी अन्य प्रकार से जीवन में-से नीरसता को मिटा सकते हैं क्या ? अगर कोई

मिटा सकते हों, तो बताए। करुणा में रस नहीं है क्या ? प्रसन्नता में रस नहीं है क्या ? समता में रस नहीं है क्या ? प्रियता में रस नहीं हैं क्या ? मेरा नम्र निवेदन केवल इतना था कि आपकी अपनी मर्जी है कि आप किस दृष्टिकोण को मानते हैं। आप किसी भी दृष्टिकोण को मानें, पर जीवन में से नीरसता मिटनी चाहिये कि नहीं ? जीवन में रस की अभिव्यक्ति होनी चाहिये कि नहीं ? अगर आप यह मानते हैं कि जीवन में-से नीरसता मिटनी चाहिए और जीवन में रस की अभिव्यक्ति होनी चाहिए, तो या तो उदारता को अपनाना पड़ेगा, या समता को प्राप्त करना पड़ेगा, या प्रियता को जगाना पड़ेगा। बिना उदारता, समता और प्रियता के जीवन में रस की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

आप देखगे कि जितने संसार में महा पुरुष हुए, वे सब करुणा से हुए। आप देख लीजिए। राजकुमार सिद्धार्थ को देख लीजिए, जैन आचार्यों को देख लीजिए, ईसा को देख लीजिए, मुहम्मद को देख लीजिए। चाहे वे सिद्धान्त रूप से ईश्वर-वादी हों, चाहे अनीश्वरवादी हों, चाहे भौतिकवादी हों, चाहे अध्यात्मवादी हों। लेकिन करुणा सबके जीवन में थी कि नहीं ? उदारता सबके जीवन में थी कि नहीं ? समता सबके जीवन में थी कि नहीं ? प्रियता सबके जीवन में थी कि नहीं ? आप दुनियां के किसी भी बड़े आदमी की बात बताएं कि जिसमें उदारता, समता, प्रियता न हो और दुनियाँ का बड़ा आदमी कहलाया हो। क्या राय है आपकी ? क्या कोई मिलेगा ? देखिये, मैं जो आपके सामने यह बात रख रहा हूं,

वह इसलिये नहीं रख रहा हूं कि आप मेरे कहने से मान लें। अगर आपको न जचे, तो न मानें।

अब प्रश्न यह रह गया कि दुनियाँ के बड़े आदमियों में आप अपना नाम नहीं लिखाना चाहते क्या ? अगर लिखाना चाहते हैं, तो उदार होने में, समता पाने में, प्रियता जगाने में आप बिल्कुल पराधीन नहीं हैं। इस दृष्टि से मैंने आपसे यह निवेदन किया कि आप मानव होने के नाते इतने सुन्दर हैं, इतने अच्छे हैं कि आपका जीवन उदारता से, समता से, प्रियता से परिपूर्ण हो सकता है और अभी हो सकता है। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। यह कोई कालान्तर की बात नहीं है। यह कोई कर्म का फल नहीं है कि आज कर्म करेंगे और कल फल बनेगा।

यह उदारता, समता और प्रियता किसका फल है ? यह सत्संग का फल है। अगर आप सत् का संग करेंगे, तो अभी उदार हो सकते हैं, अभी समता पा सकते हैं और अभी प्रियता पा सकते हैं। आप कहेंगे, कैसे ? विचार कीजिए कि किसी-न-किसी नाते हम सभी को अपना मानलें, तो उदारता जीवन में आ जायेगी कि नहीं ? यदि अध्यात्म दृष्टि से हम सभी से असंग हो जाएं, तो जीवन में समता आ जायेगी कि नहीं ? यदि हम आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक प्रभु को अपना मान लें, तो प्रियता जीवन में आजायेगी कि नहीं ?। अब आप देखिये कि एक भौतिकवादी दृष्टिकोण हो गया, एक अध्यात्मवादी दृष्टिकोण हो गया और एक आस्तिकवादी

दृष्टिकोण हो गया। इन तीनों में-से कोई-न-कोई दृष्टिकोण तो आपको अपनाना ही पड़ेगा।

अगर आप कहें कि नहीं साहब, हम न तो भौतिकवादी दृष्टिकोण को मानेंगे, न हम अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को मानेंगे और न हम ईश्वरवादी दृष्टिकोण को मानेंगे। तो कुछ न मानने पर क्या दशा होगी? यह भी बड़ी सुन्दर बात है। अगर आप कुछ नहीं मानेंगे, तो बिना माने किसी का प्रभाव आप पर होता है क्या? क्या राय है? जैसे कोई कहे कि हम जगत को भी नहीं मानेंगे, हम अपने को भी नहीं मानेंगे, हम परमात्मा को भी नहीं मानेंगे। बहुत खुशी की बात है। जब आप जगत को नहीं मानेंगे, तो जगत का प्रभाव आप पर रह जायेगा क्या? क्या राय है? तो सबके प्रभाव से रहित होने पर अपने आप निर्विकल्प स्थिति नहीं आ जायेगी क्या? अचिन्तता नहीं आजायेगी क्या? स्वाधीनता नहीं आजायेगी क्या? तो सत्य क्या निकला? अगर किसी को न मानें, तो काम बन जाए; जगत को मानें, तो काम बन जाए; अपने को मानें, तो काम बन जाए और परमात्मा को मानें, तो काम बन जाए।

अब आप बताइये कि आप किस दृष्टि से कहते हैं कि वह जीवन नहीं मिल सकता, जो संसार के बड़े–बड़े लोगों को मिला है? केवल एक ही बात हो सकती है कि आप कोई बात मानने, न मानने को राजी न हों। तब क्या उपाय है? तब तो मनुष्य संज्ञा ही नहीं बनती। मनुष्य संज्ञा तो तभी

आरम्भ होती है कि जब आप कुछ मान सकते हैं और कुछ नहीं मान सकते। या तो न मानने वाली बात मानें या मानने वाली बात मानें। आप कहें कि हम मानेंगे भी नहीं, हम नहीं मानेंगे भी नहीं। तब तो भाई कोई बात ही नहीं हुई।

मेरा निवेदन केवल इतना ही था कि जो अपने को असमर्थ अनुभव करता है, उसको भी वह जीवन मिल सकता है। जो अपने को सामर्थ्यवान अनुभव करता है, उसे भी वह जीवन मिल सकता है। बोले, असमर्थ को कैसे मिलता है? असमर्थ में कुछ न करने की स्थिति आएगी, क्योंकि सामर्थ्य के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती। आप हो गए असमर्थ, तो आपकी न करने की स्थिति आजाएगी। यदि आप सामर्थ्यवान् है, तो सामर्थ्य के सदुपयोग के बाद सामर्थ्य से तादात्म्य टूटने पर भी न करने की स्थिति आजाएगी। कैसा मंगलमय विधान है! कैसा अनुपम विधान है कि असमर्थ को भी जीवन मिल जाए और समर्थ को भी जीवन मिल जाए। लेकिन जो सामर्थ्य का दुरुपयोग करे और ऊपर से कहे कि असमर्थ और भीतर से करे सामर्थ्य का दुरुपयोग, तो उसको कहते हैं असत् का संग। मेरा निवेदन केवल इतना ही था कि जो सत् है, उसको आप स्वीकार करें। आपका सर्वतोमुखी विकास हो जाएगा।

हम क्या बताएं आपको! हम अपने जीवन को सामने रख कर नहीं सोचते। सचमुच हमने नहीं सोचा कि परमात्मा क्या है? नहीं तो परमात्मा के मिलने में देर होती? न परमात्मा के मिलने में देर, न मुक्ति पाने में देर, न शान्ति पाने

में देर। जितनी देर लगती है, वह सुख-सुविधा के भोगने में लगती है दोस्त ! लगती है कि नहीं ? यानी हम किसमें पराधीन हैं ? जैसा कि हमारे पंडित जी ने कह कर गाया था, कि हम जो चाहते हैं, सो होता नहीं, जो होता है, सो भाता नहीं और जो भाता हैं, सो रहता नहीं। इसमें हम ही पराधीन है क्या ? कौन पराधीन नहीं है ? हम कहते हैं कि ब्रह्म के बाप ने जो चाहा, सो नहीं हुआ। ब्रह्म की लुगाई ने चाहा, सो नहीं हुआ। सीता जी चाहती थीं कि हिरण का चर्म मिल जाए। मिल गया क्या ? महाराज दशरथ चाहते थे कि राम बन को न जाएं। उनकी बात पूरी होगई क्या ?

अजी, आज के महामानव गांन्धी जी चाहते थे कि हिन्दुस्तान का विभाजन न हो। क्या उनकी बात पूरी होगई ? नहीं हुई। सिद्धान्त क्या निकला ? जो चाहते हैं, सो होता नहीं; जो होता है, सो भाता नहीं और जो भाता है सो रहता नहीं। हमने कहा कि भले आदमी, चाह छोड़ क्यों नहीं देते ? अचाह होने में जीवन है। अचाह होने के लिए आंख बन्द करोगे, कि कान बन्द करोगे, कि स्वांस रोकोगे, कि आसन लगाओगे, कि मुद्रा साधोगे ? यह तो तुम्हारी मौज की बात है। मानलो कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। इसमें कोई रुपया खर्च होगा क्या ? लेकिन जब तुम अचाह हो जाओगे, तब प्रभु के लिए प्रेमी, जगत के लिए उदार और अपने लिए दुख-निवृत्ति, यह तीनों चीजें आपको मिल जाएंगी। कितनी महिमा है अचाह होने की ?

सचमुच जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह सारे जगत के लिए

उदार हो सकता है। सचमुच जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह प्रभु के लिए प्रेमी हो सकता है। उसके सर्व दुखों की निवृत्ति हो सकती है। उसे शान्ति मिल सकती है, उसे स्वाधीनता मिल सकती है। कौन रोकने वाला है ? लेकिन एक बात तो बताओ भैया ! जो कुछ भी चाहता है, वह किसी को प्यार कर पायेगा क्या ? जो कुछ भी चाहेगा, उसकी दुख-निवृत्ति हो पायेगी क्या ? उसको शान्ति मिलेगी क्या ? कभी नहीं। तो भैया, आज मानो, कल मानो; अभी मानो, कभी मानो। आपको अचाह होना ही पड़ेगा।

आप देखिये कि अचाह होने से कर्त्तव्य में कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि कर्त्तव्य का सम्बन्ध होता है प्राप्त परि-स्थिति से। आप जिस परिस्थिति में हैं, उसी के अनुसार जो करना चाहिए और जिसे कर सकते हैं, उसे कर दो। इसका नाम है, कर्त्तव्य विज्ञान। इसका नाम है, धर्म विज्ञान। जिस परि-स्थिति में आप हैं, उस परिस्थिति के अनुसार जो करना चाहिए उसे कर दो। अर्थात् आपके कर्म में आपके ज्ञान का विरोध न हो, आपके कर्म में आपकी सामर्थ्य का विरोध न हो। तो सामर्थ्य और ज्ञान के अनुसार जो कर सकते हो, उसके करने में कहां पराधीनता मालूम होती है, बताओ। क्या राय है ? सामर्थ्य विरोधी बात करनी पड़े, तब तो पराधीनता का अनुभव होता है। ज्ञान विरोधी बात करना पसन्द करें, तब पराधीनता का अनुभव होता है।

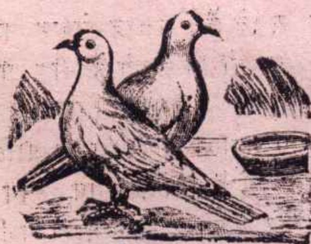
अगर हम ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार जो कार्य कर सकते हैं और जो करना चाहिए, उसको कर दें, तो बताओ, कि

कर्त्तव्य पालन में कहां पराधीनता है ? है क्या ? अच्छा, कर्त्तव्य का अन्त होने पर कर्त्ता स्वयं अपने उस अधिष्ठान में विलीन हो जाता है, जो सदैव है, जो अविनाशी है, जो चिन्मय है, जो नित्य है, जो रसरूप है और जिसकी महिमा का कोई वारापार नहीं है ।

इसलिये महानुभाव ! आप किसी भी सिद्धान्त के मानने वाले क्यों न हों, अचाह होना तो जरूरी है । कर्त्तव्य पालन भी जरूरी है । अचाह हो कर कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकते क्या ? जरूर कर सकते हैं । अचाह होकर कर्त्तव्य का पालन भी कर सकते हैं, मुक्त भी हो सकते हैं और प्रेमी भी हो सकते हैं । भैया, कुछ कामनाएं अचाह होने पर भी पूरी हो जाती हैं और सभी कामनाएं आज तक मानव-जाति के इतिहास में कभी किसी की पूरी हुई हैं क्या ? आप लोग जो यहां बैठे हैं, क्या ईमानदारी से कह सकते हैं कि हमारी सभी कामनाएं पूरी हो गईं ? और क्या यह भी कह सकते हैं कि हमारी कोई भी कामना पूरी नहीं हुई ?

कामना का पूरा होना कामना करने से सम्बन्ध नहीं रखता । यह किसी विधान से सम्बन्ध रखता है । अतः कुछ कामनाएं अवश्य पूरी हो जाएंगीं और कुछ कामनाएं पूरी नहीं होंगी । तो कामना अपूर्ति से भी कामना-निवृत्ति की प्रेरणा मिलती है और कामना-पूर्ति से भी कामना-निवृत्ति की प्रेरणा मिलती है । अतः जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसके जीवन में दुख, अशान्ति और पराधीनता नहीं रहती । जिसे कुछ नहीं चाहिये,

वह सबको अपना कह सकता है। जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह प्रेम कर सकता है। जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसका देहाभिमान गलता है। जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसे योग मिल सकता है। तो योग की प्राप्ति में, बोध की प्राप्ति में, प्रेम की प्राप्ति में कुछ न चाहना ही मूल मन्त्र है ॥ॐ॥



प्रार्थना

मेरे नाथ !
आप अपनी
सुधामयी,
सर्व समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से,
दुखी प्राणियों के हृदय में
त्याग का बल,
एवम्
सुखी प्राणियों के हृदय में
सेवा का बल
प्रदान करें,
जिससे वे
सुख-दुःख के
बन्धन से
मुक्त हो,
आपके
पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर,
कृतकृत्य हो जायँ।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !! ॐ आनन्द !!!

मानव सेवा संघ के नियम

१—आत्म-निरीक्षण अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।

२—की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।

३—विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर; अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।

४—जितेन्द्रियता, सेवा, भगवत्चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।

५—दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।

६—पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता।

७—निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।

८—शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।

९—शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान-शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।

१०—सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्त्व देना।

११—व्यर्थ-चिन्तन-त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाना।





मूल्य : ७-०० रु० । ४,००० मार्च १९६२
Rs 3-00

सन्त - वाणी (भाग-६)

सन्त - वाणी (भाग-६)